राजस्थान-भारती प्रकाशन

# पंवार वंश दर्पण

सिंढायच दयालदास कृत


सपादक

**दशरथ शर्मा**

एम ए , डी लिट



प्रकाशक

## सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट

बीकानेर

प्रकाशक
सादूळ राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट
बीकानेर (राजस्थान)

प्रथम संस्करण
सन् १९६० ई.
मूल्य – २) रुपये

मुद्रक
अजन्ता प्रिंटर्स, जयपुर

## अनुक्रमणिका

# प्रकाशकीय

श्री सादूल राजस्थानी रिसर्च-इन्स्टीट्यूट बीकानेर की स्थापना सन् १९४४ मे बीकानेर राज्य के तत्कालीन प्रधान मंत्री श्री के० एम० पणिक्कर महोदय की प्रेरणा से, साहित्यानुरागी बीकानेर-नरेश स्वर्गीय महाराजा श्री सादूलसिंहजी बहादुर द्वारा संस्कृत, हिन्दी एवं विशेषत राजस्थानी साहित्य की सेवा तथा राजस्थानी भाषा के सर्वाङ्गीण विकास के लिये की गई थी ।

भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध विद्वानो एवं भाषाशास्त्रियों का सहयोग प्राप्त करने का सौभाग्य हमे प्रारंभ से ही मिलता रहा है ।

संस्था द्वारा विगत १६ वर्षो से बीकानेर मे विभिन्न साहित्यिक प्रवृत्तियां चलाई जा रही हैं, जिनमें से निम्न प्रमुख हैं—

## १ विशाल राजस्थानी हिन्दी शब्दकोश

इस संबंध में विभिन्न स्रोतों से संस्था लगभग दो लाख से अधिक शब्दों का संकलन कर चुकी है । इसका सम्पादन आधुनिक कोशों के ढंग पर, लंबे समय से प्रारंभ कर दिया गया है और अब तक लगभग तीस हजार शब्द सम्पादित हो चुके हैं । कोश मे शब्द, व्याकरण, व्युत्पत्ति, उसके अर्थ, और उदाहरण आदि अनेक महत्वपूर्ण सूचनाएं दी गई हैं । यह एक अत्यंत विशाल योजना है, जिसकी संतोषजनक क्रियान्विति के लिये प्रचुर द्रव्य और श्रम की आवश्यकता है । आशा है राजस्थान सरकार की ओर से, प्रार्थित द्रव्य साहाय्य उपलब्ध होते ही निकट भविष्य में इसका प्रकाशन प्रारम्भ करना संभव हो सकेगा ।

## २ विशाल राजस्थानी मुहावरा कोश

राजस्थानी भाषा अपने विशाल शब्द भंडार के साथ मुहावरों से भी समृद्ध है । अनुमानत पचास हजार से भी अधिक मुहावरे दैनिक प्रयोग मे लाये जाते हैं । हमने लगभग दस हजार मुहावरों का, हिन्दी में अर्थ और राजस्थानी में उदाहरणों सहित प्रयोग देकर संपादन करवा लिया है और शीघ्र ही इसे प्रकाशित करने का प्रबंध किया जा रहा है । यह भी प्रचुर द्रव्य और श्रम-साध्य कार्य है ।

यदि हम यह विशाल संग्रह साहित्य-जगत को दे सके तो यह संस्था के लिये ही नहीं किन्तु राजस्थानी और हिन्दी जगत के लिए भी एक गौरव की बात होगी।

३. आधुनिकराजस्थानीकाशन रचनओं काप्र

इसके अन्तर्गत निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं—

१. कळायण, ऋतु काव्य। ले० श्री नानूराम संस्कर्ता

२. आभै पटकी, प्रथम सामाजिक उपन्यास। ले० श्री श्रीलाल जोशी।

३ वरस गांठ, मौलिक कहानी संग्रह। ले० श्री मुरलीधर व्यास।

'राजस्थान-भारती' में भी आधुनिक राजस्थानी रचनाओं का एक अलग स्तम्भ है, जिसमे भी राजस्थानी कवितायें, कहानियां और रेखाचित्र आदि छपते रहते हैं।

४ 'राजस्थान-भारती' का प्रकाशन

इस विख्यात शोधपत्रिका का प्रकाशन संस्था के लिये गौरव की वस्तु है। गत १४ वर्षों से प्रकाशित इस पत्रिका की विद्वानों ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। वहुत चाहते हुए भी द्रव्याभाव, प्रेस की एवं अन्य कठिनाइयों के कारण, त्रैमासिक रूप से इसका प्रकाशन सम्भव नही हो सका है। इसका भाग ५ अङ्क ३–४ 'डा० लुइजि पिओ तैस्सितोरी विशेपांक' वहुत ही महत्वपूर्ण एवं उपयोगी सामग्री से परिपूर्ण है। यह अङ्क एक विदेशी विद्वान की राजस्थानी साहित्य-सेवा का एक वहुमूल्य सचित्र कोश है। पत्रिका का अगला ७वां भाग शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रहा है। इसका अङ्क १–२ राजस्थानी के सर्वश्रेष्ठ महाकवि पृथ्वीराज राठोड़ का सचित्र और वृहत् विशेपांक है। अपने ढंग का यह एक ही प्रयत्न है।

पत्रिका की उपयोगिता और महत्व के सम्बन्ध मे इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इसके परिवर्तन मे भारत एवं विदेशो से लगभग ८० पत्र-पत्रिकाएं हमे प्राप्त होती हैं। भारत के अतिरिक्त पाश्चात्य देशो मे भी इसकी मांग है व इसके ग्राहक हैं। शोधकर्त्ताओ के लिये 'राजस्थान भारती' अनिवार्यत: संग्रहणीय शोध-पत्रिका है। इसमें राजस्थानी भापा, साहित्य, पुरातत्व, इतिहास, कला आदि पर लेखों के अतिरिक्त संस्था के तीन विशिष्ट सदस्य डा० दशरथ शर्मा, श्रीनरोत्तमदास स्वामी और श्री अगरचन्द नाहटा की वृहत् लेख सूची भी प्रकाशित की गई है।

५ राजस्थानी साहित्य के प्राचीन और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का अनुसधान, सम्पादन एव प्रकाशन

हमारी साहित्य निधि को प्राचीन, महत्त्वपूर्ण और श्रेष्ठ साहित्यिक कृतियों को सुरक्षित रखने एव सर्वसुलभ कराने के लिये सुसम्पादित एव शुद्ध रूप में मुद्रित करवा कर उचित मूल्य में वितरित करने की हमारी एक विशाल योजना है। सस्कृत, हिंदी और राजस्थानी के महत्वपूर्ण ग्रथो का अनुसंधान और प्रकाशन सस्था के सदस्यो की ओर से निरतर होता रहा है जिसका सक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है—

६ पृथ्वीराज रासो

पृथ्वीराज रासो के कई सस्करण प्रकाश में लाये गये हैं और उनमे से लघुतम सस्करण का सम्पादन करवा कर उसका कुछ अश 'राजस्थान भारती' मे प्रकाशित किया गया है। रासो के विविध सस्करण और उसके ऐतिहासिक महत्व पर कई लेख राजस्थान-भारती मे प्रकाशित हुए हैं।

७ राजस्थान के अज्ञात कवि जान (न्यामतखा) की ७५ रचनाओं की खोज की गई। जिसकी सर्वप्रथम जानकारी 'राजस्थान भारती' के प्रथम अक मे प्रकाशित हुई है। उसका महत्वपूर्ण ऐतिहासिक काव्य 'क्यामरासा' तो प्रकाशित भी करवाया जा चुका है।

८ राजस्थान के जैन सस्कृत साहित्य का परिचय नामक एक निबध राजस्थान भारती में प्रकाशित किया जा चुका है।

९ मारवाड क्षेत्र के ५०० लोकगीतों का सग्रह किया जा चुका है। बीकानेर एव जैसलमेर क्षेत्र के सैकडो लोकगीत, घूमर के लोकगीत, बाल लोकगीत, लोरियां और लगभग ७०० लोक कथाएँ सग्रहीत की गई हैं। राजस्थानी कहावतों के दो भाग प्रकाशित किये जा चुके हैं। जीणमाता के गीत, पाबूजी के पवाड़े और राजा भरथरी आदि लोक काव्य सर्वप्रथम 'राजस्थान-भारती' में प्रकाशित किए गए हैं।

१० बीकानेर राज्य के और जैसलमेर के अप्रकाशित अभिलेखो का विशाल सग्रह 'बीकानेर जैन लेख सग्रह' नामक वृहद् पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो चुका है।

११. जसवंत उद्योत, मुंहता नैणसी री ख्यात और अनोखी आन जैसे महत्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रंथों का सम्पादन एवं प्रकाशन हो चुका है।

१२. जोधपुर के महाराजा मानसिंहजी के सचिव कविवर उदयचंद भंडारी की ४० रचनाओं का अनुसंधान किया गया है और महाराजा मानसिंहजी की काव्य-साधना के संबंध मे भी सबसे प्रथम 'राजस्थान-भारती' में लेख प्रकाशित हुआ है।

१३. जैसलमेर के अप्रकाशित १०० शिलालेखों और 'भट्टि वंश प्रशस्ति' आदि अनेक अप्राप्य और अप्रकाशित ग्रंथ खोज-यात्रा करके प्राप्त किये गये हैं।

१४. बीकानेर के मस्तयोगी कवि ज्ञानसारजी के ग्रंथों का अनुसंधान किया गया और ज्ञानसार ग्रंथावली के नाम से एक ग्रंथ भी प्रकाशित हो चुका है। इसी प्रकार राजस्थान के महान विद्वान महोपाध्याय समयसुन्दर की ५६३ लघु रचनाओं का संग्रह प्रकाशित किया गया है।

१५. इसके अतिरिक्त संस्था द्वारा—

(१) डा० लुइजि पिओ तैस्सितोरी, समयसुन्दर, पृथ्वीराज, और लोकमान्य तिलक आदि साहित्य-सेवियों के निर्वाण-दिवस और जयन्तियां मनाई जाती हैं।

(२) साप्ताहिक साहित्यिक गोष्ठियों का आयोजन बहुत समय से किया जा रहा है, इसमें अनेकों महत्वपूर्ण निबंध, लेख, कविताएँ और कहानियां आदि पढी जाती हैं, जिससे अनेक विध नवीन साहित्य का निर्माण होता रहता है। विचार विमर्श के लिये गोष्ठियों तथा भाषणमालाओं आदि का भी समय-समय पर आयोजन किया जाता रहा है।

१६. बाहर से ख्यातिप्राप्त विद्वानों को बुलाकर उनके भाषण करवाने का आयोजन भी किया जाता है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, डा० कैलाशनाथ काटजू, राय श्री कृष्णदास, डा० जी० रामचन्द्रन्, डा० सत्यप्रकाश, डा० डब्लू० एलेन, डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, डा० तिबेरिओ-तिबेरी आदि अनेक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विद्वानों के इस कार्यक्रम के अन्तर्गत भाषण हो चुके हैं।

गत दो वर्षों से महाकवि पृथ्वीराज राठौड़ आसन की स्थापना की गई है। दोनों वर्षों के आसन-अधिवेशनों के अभिभाषक क्रमशः राजस्थानी भाषा के प्रकाण्ड

विद्वान् श्री मनोहर शर्मा एम० ए०, बिसाऊ और प० श्रीलालजी मिश्र एम० ए०, हूडलोद, थे।

इस प्रकार सस्था अपने १६ वर्षों के जीवन-काल में, सस्कृत, हिन्दी और राजस्थानी साहित्य की निरतर सेवा करती रही है। आर्थिक सकट से ग्रस्त इस सस्था के लिये यह सभव नही हो सका कि यह अपने कायक्रम को नियमित रूप से पूरा कर सकती, फिर भी यदा कदा लडखडा कर गिरते पडते इसके कायकर्त्ताओ ने 'राजस्थान भारती' का सम्पादन एव प्रकाशन जारी रखा और यह प्रयास किया कि नाना प्रकार की बाधाओ के बावजूद भी साहित्य सेवा का काय निरतर चलता रहे। यह ठीक है कि सस्था के पास अपना निजी भवन नही है, न अच्छा संदभ पुस्तकालय है, और न काय को सुचारु रूप से सम्पादित करने के समुचित साधन ही हैं, परन्तु साधनो के अभाव मे भी सस्था के कायकर्त्ताओ ने साहित्य की जो मौन और एकान्त साधना की है वह प्रकाश मे आने पर सस्था के गौरव को निश्चय ही बढ़ा सकने वाली होगी।

राजस्थानी-साहित्य भडार अत्यन्त विशाल है। अब तक इसका अत्यल्प अश ही प्रकाश मे आया है। प्राचीन भारतीय वाङ्मय के अलभ्य एव अनर्घ रत्नो को प्रकाशित करके विद्वज्जनों और साहित्यिको के समक्ष प्रस्तुत करना एव उन्हे सुगमता से प्राप्त कराना सस्था का लक्ष्य रहा है। हम अपनी इस लक्ष्य पूर्ति की ओर धीरे-धीरे किन्तु दृढता के साथ अग्रसर हो रहे हैं।

यद्यपि अब तक पत्रिका तथा कतिपय पुस्तको के अतिरिक्त अन्वेषण द्वारा प्राप्त अन्य महत्वपूर्ण सामग्री का प्रकाशन करा देना भी अभीष्ट था, परन्तु अर्थाभाव के कारण ऐसा किया जाना सभव नही हो सका। हर्ष की बात है कि भारत सरकार के वैज्ञानिक सशोध एव सास्कृतिक कायक्रम मत्रालय (Ministry of scientific Research and Cultural Affairs) ने अपनी आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास की योजना के अन्तगत हमारे कायक्रम को स्वीकृत कर प्रकाशन के लिये रु० १५०००) इस मद मे राजस्थान सरकार को दिये तथा राजस्थान सरकार द्वारा उतनी ही राशि अपनी ओर से मिलाकर कुल रु० ३००००) तीस हजार की सहायता, राजस्थानी साहित्य के सम्पादन प्रकाशन

हेतु इस संस्था को इस वित्तीय वर्ष मे प्रदान की गई हैं; जिससे इस वर्ष निम्नोक्त ३१ पुस्तको का प्रकाशन किया जा रहा है ।

| | |
|---|---|
| १. राजस्थानी व्याकरण— | श्री नरोत्तमदास स्वामी |
| २. राजस्थानी गद्य का विकास (शोध प्रबंध) | डा० शिवस्वरूप शर्मा अचल |
| ३. अचलदास खीची री वचनिका— | श्री नरोत्तमदास स्वामी |
| ४. हमीरायण— | श्री भंवरलाल नाहटा |
| ५. पद्मिनी चरित्र चौपई— | ,, ,, ,, |
| ६. दलपत विलास | श्री रावत सारस्वत |
| ७. डिंगल गीत— | ,, ,, ,, |
| ८. पंवार वंश दर्पण— | डा० दशरथ शर्मा |
| ९. पृथ्वीराज राठोड़ ग्रंथावली— | श्री नरोत्तमदास स्वामी और श्री बद्रीप्रसाद साकरिया |
| १०. हरिरस— | श्री बद्रीप्रसाद साकरिया |
| ११. पीरदान लालस ग्रंथावली— | श्री अगरचन्द नाहटा |
| १२. महादेव पार्वती वेलि— | श्री रावत सारस्वत |
| १३. सीताराम चौपई— | श्री अगरचन्द नाहटा |
| १४. जैन रासादि संग्रह— | श्री अगरचन्द नाहटा और डा० हरिवल्लभ भायाणी |
| १५. सदयवत्स वीर प्रबन्ध— | प्रो० मंजुलाल मजूमदार |
| १६. जिनराजसूरि कृतिकुसुमांजलि— | श्री भंवरलाल नाहटा |
| १७. विनयचन्द कृतिकुसुमांजलि— | ,, ,, ,, |
| १८. कविवर धर्मवर्द्धन ग्रंथावली— | श्री अगरचन्द नाहटा |
| १९. राजस्थान रा दूहा— | श्री नरोत्तमदास स्वामी |
| २०. वीर रस रा दूहा— | ,, ,, ,, |
| २१. राजस्थान के नीति दोहा— | श्री मोहनलाल पुरोहित |
| २२. राजस्थान व्रत कथाएं— | ,, ,, ,, |
| २३. राजस्थानी प्रेम कथाएं— | ,, ,, ,, |
| २४. चंदायन— | श्री रावत सारस्वत |

| | |
|---|---|
| २५ भड्डली— | श्री अगरचन्द नाहटा<br>म० विनय सागर |
| २६ जिनहर्ष ग्रंथावली | श्री अगरचन्द नाहटा |
| २७ राजस्थानी हस्तलिखित ग्रंथों का विवरण | ,, ,, |
| २८ दम्पति विनोद | ,, ,, |
| २९ हीयाली राजस्थान का बुद्धिवर्धक साहित्य | ,, ,, |
| ३० समयसुन्दर रासत्रय | श्री भंवरलाल नाहटा |
| ३१ दुरसा आढा ग्रंथावली | श्री बदरीप्रसाद साकरिया |

जैसलमेर ऐतिहासिक साधन संग्रह (संपा० डा० दशरथ शर्मा), ईशरदास ग्रंथावली (संपा० बदरीप्रसाद साकरिया), रामरासो (प्रो० गोवर्द्धन शर्मा), राजस्थानी जैन साहित्य (लि० श्री अगरचन्द नाहटा), नागदमण (संपा० बदरीप्रसाद साकरिया), मुहावरा कोश (मुरलीधर व्यास) आदि ग्रंथों का संपादन हो चुका है परन्तु अर्थाभाव के कारण इनका प्रकाशन इस वर्ष नहीं हो रहा है।

हम आशा करते हैं कि कार्य की महत्ता एवं गुरुता को लक्ष्य में रखते हुए अगले वर्ष इससे भी अधिक सहायता हमें अवश्य प्राप्त हो सकेगी जिससे उपरोक्त संपादित तथा अन्य महत्वपूर्ण ग्रंथों का प्रकाशन सम्भव हो सकेगा।

इस सहायता के लिये हम भारत सरकार के शिक्षाविकास सचिवालय के आभारी हैं, जिन्होंने कृपा करके हमारी योजना को स्वीकृत किया और ग्रान्ट इन-एड की रकम मंजूर की।

राजस्थान के मुख्य मन्त्री माननीय मोहनलालजी सुखाडियाँ, जो सौभाग्य से शिक्षा मन्त्री भी हैं और जो साहित्य की प्रगति एवं पुनरुद्धार के लिये पूर्ण सचेष्ट हैं, का भी इस सहायता के प्राप्त कराने में पूरा-पूरा योगदान रहा है। अतः हम उनके प्रति अपनी कृतज्ञता सादर प्रगट करते हैं।

राजस्थान के प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षाध्यक्ष महोदय श्री जगन्नाथसिंहजी मेहता का भी हम आभार प्रगट करते हैं, जिन्होंने अपनी ओर से पूरी-पूरी दिलचस्पी लेकर हमारा उत्साहवर्द्धन किया, जिससे हम इस वृहद् कार्य को सम्पन्न करने में समर्थ हो सके। संस्था उनकी सदैव ऋणी रहेगी।

इतने थोड़े समय में इतने महत्वपूर्ण ग्रन्थो का संपादन करके संस्था के प्रकाशन-कार्य मे जो सराहनीय सहयोग दिया है, इसके लिये हम सभी ग्रन्थ सम्पादकों व लेखको के अत्यंत आभारी हैं।

अनूप संस्कृत लाइब्रेरी और अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर, स्व० पूर्णचन्द्र नाहर संग्रहालय कलकत्ता, जैन भवन संग्रह कलकत्ता, महावीर तीर्थक्षेत्र अनुसंधान समिति जयपुर, ओरियंटल इन्स्टीट्यूट बड़ोदा, भांडारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना, खरतरगच्छ वृहद् ज्ञान-भंडार बीकानेर, मोतीचंद खजान्ची ग्रंथालय बीकानेर, खरतर आचार्य ज्ञान भण्डार बीकानेर, एशियाटिक सोसाइटी बंबई, आत्माराम जैन ज्ञानभंडार बडोदा, मुनि पुण्यविजयजी, मुनि रमणिक विजयजी, श्री सीताराम लालस, श्री रविशंकर देराश्री, पं० हरदत्तजी गोविंद व्यास जैसलमेर आदि अनेक सस्थाओ और व्यक्तियों से हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त होने से ही उपरोक्त ग्रन्थो का संपादन संभव हो सका है। अतएव हम इन सबके प्रति आभार प्रदर्शन करना अपना परम कर्त्तव्य समझते हैं।

ऐसे प्राचीन ग्रन्थों का सम्पादन श्रमसाध्य है एवं पर्याप्त समय की अपेक्षा रखता है। हमने अल्प समय मे ही इतने ग्रन्थ प्रकाशित करने का प्रयत्न किया इसलिये त्रुटियों का रह जाना स्वाभाविक है। गच्छतः स्खलनंक्वपि भवत्येव प्रमादतः, हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति साधवः।

आशा है विद्वद्वृन्द हमारे इन प्रकाशनों का अवलोकन करके साहित्य का रसास्वादन करेंगे और अपने सुझावो द्वारा हमें लाभान्वित करेंगे जिससे हम अपने प्रयास को सफल मानकर कृतार्थ हो सकेंगे और पुनः मां भारती के चरण कमलों मे विनम्रतापूर्वक अपनी पुष्पांजलि समर्पित करने के हेतु पुनः उपस्थित होने का साहस बटोर सकेंगे।

निवेदक
लालचन्द कोठारी
प्रधान-मंत्री
सादूल राजस्थानी-इन्स्टीट्यूट
बीकानेर

बीकानेर,
मार्गशीर्ष शुक्ला १५
सं० २०१७
दिसम्बर ३,१९६०.

# प्रस्तावना

राजस्थान ही की नही, प्राय समस्त भारत की प्राचीन ऐतिह्य सामग्री बहुत कुछ दुलभ है। किन्तु मानव की स्वभावत यह इच्छा होती है कि वह अपने पूवजों के विषय मे कुछ न कुछ ज्ञान प्राप्त करे। यह ज्ञान सत्य पर आश्रित हो तो ठीक ही है, अन्यथा कल्पित सत्य से सतोष करने की वृत्ति भी मानव समाज में वतमान है, विशेषत उस समय के लिए जब उसे सत्य तक पहुँचने के साधन आसानी से प्राप्त न हों। भाटो और चारणो की अनेक वशावलिया इसी मानवी वृत्ति को ध्यान मे रख कर बनाई गई हैं। उनका कुछ भाग सवथा सत्य रहता है। इसका लेखक को समय-सानिध्य के कारण अच्छा ज्ञान रहता है, और किसी अश तक उसके श्रोताओ को भी। किन्तु इन वशावलियों के आरम्भिक भाग मे कल्पना इतने अधिक अश मे होती है कि उसके सत्याश पर भी लोग अश्रद्धा करने लगते हैं। दयालदास सिढायच का पवार-वश दपण और पवारवशावलि ऐसे ही चारणी सन्दर्भों मे है। पाठक इनके सत्याश को ग्रहण कर असत्याश की अवहेलना करेंगे—इसी आशा से ये सन्दभ प्रकाशित किए जा रहे हैं। "सारततो ग्राह्यमपास्य फल्गु"।

"पवार वश दपण" की रचना दोहों और कवित्तो मे हुई है। इनका हिन्दी साराश देने की विशेष आवश्यकता नही है, क्योकि पवारवशावलि बहुत कुछ इन्ही का भावानुवाद है। वशावलीकार ने इसी को आधार मान कर अपनी वशावली की रचना की है, और अन्त मे कुछ ऐसे तथ्य जोड दिये हैं जो पवारवशदपण मे वतमान नही है। जगद्देव का वणन 'दपण' में कुछ विशेष रूप मे है। अन्त के दो कवित्त भी ऐसे हैं जिन्हे किसी अश मे दपण की ही सम्पत्ति कहा जा सकता है।

प्रतीत होता है कि इन सन्दर्भों ने परमारों की उत्पत्ति के विषय में मुख्यत: पृथ्वीराजरासो का अनुसरण किया है जिसके अनुसार असुरों का संहार करने के लिये वशिष्ठ ने चार क्षत्रियकुल उत्पन्न किये, चालुक्य, चौहान, परमार और प्रतिहार। गोत्रादि शायद स्वयं ही इन ग्रंथों ने दिए हैं। इनके अनुसार अग्निकुण्ड से उत्पन्न परमार का गोत्र वत्स था और उसके पांच प्रवर थे। उसकी शाखा माध्यंदिनी और कुलदेवी सचियाय माता थी। नैणसी ने भी परमारों के अग्निकुण्ड से उत्पन्न होने की कथा दी है, किन्तु उसमे उनका गोत्र वशिष्ठ दिया है जो अधिक ठीक है। वत्स गोत्र वास्तव मे चौहानो का है। परमारो के वशिष्ठ के अग्निकुण्ड से उत्पन्न होने की कथा परमारो के प्राचीन से प्राचीन शिलालेखों और काव्यों में वर्तमान है। इसलिये हम किसी अन्य राजपूत जाति को अग्निवंशी मानें या न मानें परमारो को अग्निवंशी मानने मे हमे विशेष दुविधा नही हो सकती। अग्निवंशी होना उतना ही सम्भव या असम्भव है जितना सूर्यवंशी या चन्द्रवंशी। यह भी सम्भव है कि परमार मूलत: वशिष्ठगोत्रीय अग्निहोत्री ब्राह्मणवर्ग के अन्तर्गत रहे हो और इसी कारण से परतरकाल में उन्हे अग्निवंशी मान लिया गया हो। किन्तु यह धारणा भी कल्पना पर ही आश्रित है; यह सत्य भी हो सकती है और असत्य भी [1]।

हम ऊपर लिख चुके हैं कि ऐसे चारणी सन्दर्भों के अनेक नाम कल्पित रहते है। किन्तु इस कल्पना का श्रेय और दु:श्रेय हम सर्वथा दयालदास सिण्ढायच को नही दे सकते, क्योकि उसके समय से पूर्व ही कुछ ऐसी वंशावलियां प्रचलित हो चुकी थी जिनमे अनेक नामो की कल्पना की जा चुकी थी। नैणसी ने ऐसी दो वंशावलिया दी है (भाग १ पृष्ठ २३१–२३२) जिनमे पंवारवंशदर्पण और वंशावली के कुछ नाम वर्तमान हैं। नैणसी ने लगभग ६४ नाम दिए हैं। दयालदास ने १३२ पीढियां दी है। वंशावली में

---

१. इस विषय मे हमारा 'परमारो की उत्पत्ति' नाम का लेख देखें (राजस्थान-भारती, भाग ३, अङ्क २, पृ. २–८ तथा इसी ग्रंथ मे पृष्ठ ४८–५७ पर)

कुछ पीढ़ियां भिन्न हैं। इसी से अनुमान किया जा सकता है कि नैणसी और दयालदास के बीच के समय मे चारणो ने वंशावली को द्विगुणित करने की कृपा की थी।

वंशावली के आठवें राना धौम्यपाद को हम नैणसी का धूमऋषि और शिलालेखों का धूमराज मान सकते हैं। लघु सुरपति शायद अभिलेखो का उपेन्द्र हो। किंतु उनसे पहले और पीछे के नाम प्राय कल्पित हैं। अभिलेखो के आधार पर मारवाड और आबू के परमारो की वंशावली हम निम्नलिखित रूप मे प्रस्तुत कर सकते हैं। [२]

धूमराज
|
१ सिंधुराज
|
२ उत्पलराज
|
३ अरण्यराज
|
४ कृष्णराज प्रथम ( वि० स० १०२४ )[३]
|
५ धरणीवराह
|
६ धूमट ( ध्रुवभट ) उपनाम महीपाल
|
७ धंधुक
|
८ पूर्णपाल (वि स १०६६-११०२) ९ दन्तिवर्मा १० कृष्णदेव दूसरा (वि स १११७-२१)

२ यह वंशावली मुख्यत डा० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा की शोध पर आधारित है। इनमे से शोध का कुछ भाग वे अपने राजपूताने के इतिहास मे न प्रयुक्त कर सके थे।

३ ओझा निबन्ध संग्रह द्वितीय भाग, पृ २४३

९. दन्तिवर्मा      १०. कृष्णदेव दूसर
|<br>योगराज      ११. कायलदेव
|<br>रामदेव      १२. विक्रमसिंह
|<br>१३. यशोधवल      रणसिंह
(वि. स. १२०२-७)
|<br>१४. धारावर्ष (वि० सं० १२२०–७६)
|<br>१५. सोमसिंह (वि० सं० १२८७–९३)
|<br>१६. कृष्णराज तीसरा
|<br>१७. प्रतापसिंह (वि० सं० १३४४)
|<br>१८. विक्रमसिंह

आबू के परमार राज्य की देवड़े चौहानों ने समाप्ति की [४]। 'दर्पण' और "वंशावली" का छत्तीसवां राजा धरणीवराह ऊपर दी हुई वंशावली का पांचवा शासक है। एक प्राचीन छप्पय के अनुसार, जिसे दयालदास ने भी उद्धृत किया है और जिसका भावानुवाद 'परमार-वंशावलि' में विद्यमान है, धरणीवराह ने 'नवकोटि मारवाड' अपने नो भाइयो मे बांट दी थी। उसने मंडार सांवतसिंह को, अजमेर अजयसिंह को, पूंगल गजमल को, लुद्रवा भाण को, घाट योगराज को, पारकर हांसू को, पल्लू अरिसिंह को, अर्बुद पालणसिंह को, जालोर भोज को और किराडू राजगी को दिया। किन्तु यह कोरी भटभणन्त है। अजमेर की स्थापना तो शाकम्भरीराज अजयसिंह ने बारहवी शताब्दी मे की थी। जब धरणीवराह का समय

४. देखे हमारा लेख "चन्द्रावती एवं आबू के देवड़े चौहान," राजस्थान भारती भाग १ अंक ४.

'दपण' और 'वशावली' ने विक्रमादित्य से भी पूव रखा है, तो वह अजमेर अपने भाई अजयसिंह को किस प्रकार दे सकता था ?

वास्तव मे धरणीवराह का समय वि० स० १०२४ से पूव नही रखा जा सकता। न सब राजस्थान ही उसके अधिकार मे था कि वह उसे अपने भाइयो म बाट देता। हथूडी के शिलालेख से तो प्रतीत होता है कि चौलुक्य राजा मूलराज ने जब उसे घर दबाया तो उसने हथूडी के राठोड राजा धवल की शरण ली थी[५]। उसका चक्रवर्तित्व और प्रबलता दोनो ही कल्पित हैं।

इसके बाद कुछ ऐतिहासिक नाम अस्त-व्यस्त रूप में ५५ वी से ५८ वी पीढी तक वतमान है। राजा सिंहसेन को हम मालवे का प्रतापी राजा सीयक मान सकते हैं जिसका सं० १००५ का एक लेख हर्सोले से मिला है और जिसने वि० स० १०२९ में दक्षिणी राष्ट्रकूटो की राजधानी मान्यखेट को लूटा। राजा मुञ्ज या वाक्पति द्वितीय इसका पुत्र था। यह महाकवि, महाविद्वान्, और महान् वीर था। इसके समय परमारो के राज्य का चारो ओर प्रसार हुआ। सन् ९९५ से ९९७ ई० के बीच मे यह कल्याण के चौलुक्य राजा तैलप द्वितीय के हाथो मारा गया[६]। सिंधुसेन जिसे वशावली ने सम्भवत मुञ्ज का पुत्र माना है, वास्तव मे उसका छोटा भाई और उत्तराधिकारी था। 'दपण' की वशावली मे इन दोनों भाइयो के स्थान मे शीलध्वज और सुतनदेव के नाम हैं, जो ठीक नहीं माने जा सकते।[७] सत्तावनवा राजा भोज सिंधुराज का पुत्र एव उत्तराधिकारी था। उसके राज्य का सब से पहला अभिलेख वि० स० १०६७ (सन् १०१० ई०) का है। उसकी वदान्यता और शौय दोना ही जगत्प्रसिद्ध हैं।

---

५ एपिग्राफिया इण्डिका, जि० १० पृ० २१

६ देखें प्रबन्धचिन्तामणि

७ सिंधुसेन का ठीक नाम सिंधुराज है। उसकी उपाधि नवसाहसाङ्क थी।

उसने कल्याण के चौलुक्यों को हरा कर मुञ्ज की मृत्यु का बदला लिया और शाकम्भरी के चौहान राजा वीर्यराम को मारा। चित्तौड़ पर उसका अधिकार था। इन्द्ररथ, तोग्गल, भीम आदि अनेक पड़ोसी राजाओं को भी उसने हराया; और उससे संरक्षित विद्वानों द्वारा रचित अनेक ग्रंथों से संस्कृत साहित्य अलंकृत है। भोज की मृत्यु के समय उसके विरोधी गुजरात के राजा भीमदेव प्रथम और चेदिराज कर्ण ने धारा को घेर लिया था और स्थिति काफी खराब थी। प्रतीत होता है कि अन्त में चत्वन् भोज के भाग्य ने भी पलटा खाया था।

इन सन्दर्भों का उदाहरण भोज का भाई उदयादित्य है जिसने भोज की मृत्यु के कुछ समय बाद मालवदेश को पुनः स्वतन्त्र किया। यह भी अच्छा विद्वान था। इसके बाद अनेक कल्पित नामों को देकर 'दर्पण' और 'वंशावली' ने जगद्देव का नाम दिया है जो अपने समय का अप्रतिम वीर था। तीन छप्पयों में दयालदास ने उसका गुणगान किया है। इनमें विशेष रूप से जगद्देव के कंकाली को अपने शिर का दान देने की कथा का वर्णन है। अन्यत्र हम सिद्ध कर चुके हैं कि जगद्देव वास्तव में त्रिविध वीर था। उसने जयसिंह सिद्धराज को दान में ही नहीं, युद्ध में भी नीचा दिखाया था। कल्याण के प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्य षष्ठ के दरबार में उसका पूर्ण सम्मान था, और उसके जीवन का अन्तिम भाग विक्रमादित्य के सामन्त के रूप में मालव भूमि से अन्यत्र ही बीता। किन्तु जहां जगद्देव होता, वहीं याचक और विद्वान् भी निश्चितरूप से पहुँचते, और उसकी वदान्यता और शौर्य की अनेक कथाओं से हमारा साहित्य सुरभित है।

मालवे में उदयादित्य के बाद वास्तव में लक्ष्मण वर्मा गद्दी पर बैठा, और उसका उत्तराधिकारी उसका छोटा भाई नरवर्मा हुआ, जिसके समय तक चित्तौड में परमारों का अधिकार था। ८

---

८. देखें राजस्थान भारती, भाग ४, अङ्क ४, पृ० ४०-५१.

अभिलेखो के आधार पर मालवे और बागड के परमारो की वशावली निम्नलिखित है [९]

- १ उपेन्द्र
  - २ वरिसिंह प्रथम
    - ३ सीयक प्रथम
      - ४ वाक्पतिराज प्रथम
        - ५ वरिसिंह द्वितीय
          - ६ सीयक द्वितीय (श्रीहर्ष) वि स १००५–२६
            - ७ मुज (वाक्पति द्वितीय, उत्पलराज)[१०] (वि स १०३५ ५२)
            - ८ सिन्धुराज नवसाहसाङ्क
    - १ डवरसिंह (बागड की शाखा)
      - २ धनिक
      - अज्ञातनाम
        - ३ चच्च
          - ४ कवदेव
            - ५ चडप
              - ६ सत्यराज

---

९ देखें युगप्रधानगुर्वावलि ( सिंघी जैन ग्रन्थमाला ) और इण्डियन हिस्टोरिकल क्वाटरली में प्रकाशित हमारा लेख, Gleanings from the Kharataragacchapattavali, भाग २६, पृ० २२३ २३१

१० मुख्यत यह वशावली ओझाजी के इतिहास पर आधारित है। किन्तु नवीन शोध के आधार पर कुछ तिथिया बदल दी गई है। इनके लिये कुमारी प्रतिपाल भाटिया का शोधनिबन्ध द्रष्टव्य है।

९. भोज[11] वि.स.१०६७-१०९९ 　 ११. उदयादित्य वि.सं.१११६(?)-११४३ 　 ७. लिंबराज 　 ८. मंडलीक (वि.सं.१११६)

| | |
|---|---|
| ९. भोज → १०. जयसिंह (१११२-२) | |
| ११. उदयादित्य → १२. लक्ष्मदेव, १३. नरवर्मा वि.सं.११६१-११९०, जगद्देव | |
| १३. नरवर्मा → १४. यशोवर्मा वि.सं.११९१-२ | |
| १४. यशोवर्मा → १५. अजयवर्मा (जयवर्मा)[12], महाकुमार लक्ष्मीवर्मा वि.सं. १२०० | |
| १५. अजयवर्मा (जयवर्मा) → १६. विन्ध्यवर्मा → १७. सुभटवर्मा → १८. अर्जुनवर्मा | |
| महाकुमार लक्ष्मीवर्मा → म.कु. त्रैलोक्यवर्मा[13], म.कु. हरिश्चन्द्रवर्मा | |
| म.कु. हरिश्चन्द्रवर्मा → म. कु. उदयवर्मा वि.सं. १२५६, १९. देवपाल वि.सं.१२७५-१२९२ | |
| ८. मंडलीक → ९. चामुण्डराज (वि.११३६-११५९) → १०. विजयराज | |

११. हाल ही में भोज का संवत् १०६७ का अभिलेख मिला है। उससे पहले वि० सं० १०७६ का अभिलेख भोज का सबसे प्राचीन उल्लेख माना जाता था।

१२. ओझाजी ने जयवर्मा और अजयवर्मा को भिन्न माना है।

१३. महाकुमार त्रैलोक्यवर्मा का शिलालेख भी ग्यारसपुर से अभी मिला है (देखें एपिग्राफिआ इण्डिका, भाग ३२, पृ० ९३ आदि)

२० जयसिंह द्वितीय
जयतुगिदेव, जैत्रमल्ल
(वि स १२९२ १३१४)

२१ जयवर्मा, जयसिंह[१४]
वि स १३१४–१३३०

अर्जुनवर्मा (दूसरा) भोज दूसरा

जयसिंह चतुथ वि स १३६६

इस वश के प्रारम्भिक राजाओ का तिथिक्रम अनिश्चित है। कई विद्वान् उपेन्द्र को राष्ट्रकूट इन्द्र तृतीय का समकालीन मानते हैं, जिसका समय सन् ९१५ से ९२७ ई० है। किन्तु सीयक के समय (सन् ९४९–९७३) को ध्यान में रखते हुए उपेन्द्र को हमें सन् ८२५ से ८५० के लगभग रखना होगा। ऐसी अवस्था मे उपेन्द्र को हम प्रतिहार सम्राट भोज और राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष प्रथम का समकालीन मान सकते हैं। परमारो के उत्पत्ति-स्थान आबू को और तत्कालीन परिस्थिति को ध्यान मे रखते हुए भी सम्भवत यही मानना ठीक होगा कि मालवे के परमारों ने अपना राजनीतिक जीवन कन्नौज के प्रतिहारो के सामन्तों के रूप मे ही शुरू किया था। उससे पूर्व के मालवे के राजाओ ने अनेकश राष्ट्रकूटो का साथ देकर प्रतिहारों को हानि पहुचाई थी। मालवे में उपेन्द्र के परमार वश की स्थापना कर सम्भवत मिहिरभोज ने इसी स्थिति को समाप्त करने का प्रयत्न किया। किसी अश तक उसकी यह नीति सफल भी हुई, और वाक्पति जैसे परमार राजाओ ने प्रतिहारो को गङ्गासागर तक पहुचने में सहायता दी।[१५] महेन्द्रपाल प्रतिहार के शिलालेख बिहार और बगाल मे मिले हैं। वह

१४ देखें प्रासीडिंग्ज आव दी इण्डियन आरियटल कानफ्रेन्स, १९५७, मे डा० डी० सी० सरकार का अभिभाषण।

१५ देखें उदयपुर प्रशस्ति और जनल आफ इण्डियन हिस्ट्री, १९६० में हमारा महेन्द्रपाल और महीपाल पर लेख।

वाक्पति का समसामयिक था और सामन्तीय दृष्टि से उसका स्वामी भी रहा होगा।

महेन्द्रपाल के बाद प्रतिहार साम्राज्य की स्थिति बदली। राष्ट्रकूटों के एक के बाद एक अनेक आक्रमण भी प्रतिहार साम्राज्य पर हुए। शायद वाक्पति के उत्तराधिकारी वज्जट स्वामी ने उनकी सहायता से सर्वथा स्वतन्त्र होने का प्रयत्न भी किया हो।[१६] किन्तु सोड्ढदेव के काहला अभिलेख से प्रतीत होता है कि उसे इस प्रयत्न में विशेष सफलता मिली और परमारों ने कुछ समय के लिये मालवा छोड़ कर लाट के आस-पास राष्ट्रकूटों के अधीनस्थ हो कर किसी अधीनस्थ राज्य की स्थापना की।[१७] सीयक द्वितीय ने कृष्ण तृतीय को दक्षिण में लगा देख कर सम्भवतः शनैः शनैः अपनी शक्ति की वृद्धि की हो। जैसा हम ऊपर लिख चुके हैं सन् ९७२ (वि. सं. १०२९) में उसने मान्यखेट को लूटा। उसके उत्तराधिकारियों में से सिन्धुराज, भोज, उदयादित्य, लक्ष्मदेव और नरवर्मा के विषय में हम ऊपर संक्षेप मे लिख चुके हैं। वह वर्णन अपर्याप्त होते हुए भी उस समय का कुछ दिग्दर्शन कराता है।

नरवर्मा के समय गुजरात के चौलुक्यों ने मालवे पर आक्रमण शुरू कर दिए। चौहानों ने भी अवसर देख कर मालवे पर चढाइयां की।[१८] नरवर्मा स्वयं अच्छा विद्वान् और विद्वानों का आदर करने वाला था। उसके पुत्र यशोवर्मा के राज्यकाल में चौलुक्यों के आक्रमणों ने और उग्र रूप धारण किया और वि. सं. ११९२ मे या उससे कुछ पूर्व जयसिंह सिद्धराज ने धारा पर अधिकार कर लिया।

---

१६. उदयपुर प्रशस्ति से प्रतीत होता है कि अपनी तलवार के बल पर उसने धारा को हस्तगत करने का प्रयत्न किया था।

१७. धाराधीश की विफलता का उल्लेख सोढदेव के काहला के अभिलेख मे है। हर्सोले के शिलालेख से उनकी लाटदेश के आस-पास स्थिति अनुमित की जा सकती है।

१८. हमारी "अर्ली चौहान डाइनेस्टीज" मे अर्णोराज का वर्णन पढ़ें।

यशोवर्मा के बाद का इतिहास कुछ अन्धकारपूर्ण है। जयवर्मा और अजयवर्मा को एक माना जाय तो उसके दो पुत्र थे, अजयवर्मा या जयवर्मा और महाकुमार लक्ष्मीवर्मा।[१९] अजयवर्मा शायद युद्ध में मारा गया और मालवे के मध्यवर्ग मे शत्रुओं को प्रबल देख कर सम्भवत लक्ष्मीवर्मा ने नीमाड प्रान्त के पास एक छोटा सा स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया।[२०] इसीके आस-पास सम्भवत अपनी मृत्यु से पूर्व सम्भवत शत्रुओ को रोकने की इच्छा से जयवर्मा ने हरिश्चन्द्रवर्मा को एक छोटी-मोटी जागीर दी थी।[२१] लक्ष्मीवर्मा की मृत्यु के बाद इसका ज्येष्ठ पुत्र त्रैलोक्यवर्मा उसी राज्य का अधिकारी हुआ। त्रैलोक्यवर्मा के बाद वहाँ क्रमश हरिश्चन्द्रवर्मा, उदयवर्मा और उसके छोटे भाई देवपाल ने राज्य किया।

केन्द्रीय मालवदेश की स्थिति इस समय कुछ अस्तव्यस्त सी थी। चौलुक्यो के आक्रमणो ने उसकी शक्ति तोड दी थी, और कल्याण के चौलुक्योंने भी इस पर आक्रमण कर इसकी स्थिति और खराब की। होयसल विष्णुवर्धन ने वि स ११९९ से पूर्व धारा पर अधिकार कर लिया था और उसके पुत्र जगदेकमल्ल के हाथ ही सम्भवत जयवर्मा युद्ध मे मारा गया।[२२] जगदेकमल्ल स्वय मालवे मे न ठहरा, किन्तु उसने बल्लाल नाम के किसी राजकुमार को सम्भवत अपने प्रतिनिधि के रूप में मालवे में छोडा। समय उसके अनुकूल था। परमार दुर्बल थे। गुजरात मे जयसिंह सिद्धराज की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी का प्रश्न उठ खडा हुआ था, और चौलुक्य राजा कुमारपाल इस स्थिति मे न था कि वह मालवे पर

---

१९ देखें टिप्पण ११

२० उदयकुमार के स० १५५६ के शिलालेख में लिखा है कि जयवर्मा के राज्य के अस्त होने पर लक्ष्मीवर्मा ने अपनी तलवार के बल से अपना राज्य स्थापित किया।

२१ देखें टिप्पण १२

२२ जगदेकमल्ल मालवे के राजा को नष्ट करने का दावा करता है।

एक दम आक्रमण कर सके। वल्लाल ने इसका पूरा लाभ उठा कर मालवे में अपनी शक्ति को सुदृढ़ किया और सम्भवतः चौहान राजा अर्णोराज से भी मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किया।

संवत् १२०७ के आस-पास वल्लाल चौलुक्यों से युद्ध करता हुआ मारा गया और लगभग २० साल के लिये मालवा सर्वथा चौलुक्यों के अधीन हो गया। कुमारपाल की मृत्यु के बाद जब गुजरात की स्थिति बिगड़ने लगी तो अजयवर्मा के पुत्र विंध्यवर्मा को फिर स्वतन्त्र होने का अवसर मिला। चौलुक्यों के विरुद्ध उसका युद्ध कई वर्ष तक चला होगा। इसी युद्ध में विंध्यवर्मा एक बार हारा और गुजराती सेनापति ने उसके गोग्गा नाम के स्थान को नष्ट किया।[२३] किन्तु अर्जुनवर्मा तो गूर्जरोच्छेद के लिये सन्नद्ध था।[२४] उसने गुजरातियों पर बार-बार आक्रमण कर अन्ततः मालवे से बाहर कर दिया।[२५]

विंध्यवर्मा विद्वानों का संरक्षक था। सुल्हण बिल्हण आदि अनेक कवि उसके दरबार में थे। जैन विद्वान् आशाधर ने भी उस समय सपादलक्ष को छोड़ कर विन्ध्यवर्मा के राज्य में शरण ली थी जिससे स्पष्ट है कि उस समय विन्ध्यवर्मा के राज्य की स्थिति सुदृढ और सुव्यवस्थित थी। साथ ही इससे यह भी निश्चित है कि विंध्यवर्मा लगभग संवत् १२५० (?) तक जीवित था।

सुभटवर्मा के समय परमारों ने गुजरात पर सफल आक्रमण किया और उसके पुत्र अर्जुनवर्मा ने चौलुक्य राजा जयसिंह (जयंतसिंह) को परास्त

---

२३. सुरथोत्सव, सर्ग १५, श्लोक ३६

२४. अर्जुनवर्मा के सं० १२७२ के दानपत्र में उसे 'गूर्जरोच्छेदनिबंन्धी' कहा गया है।

२५. देखें Summaries of Papers, Indian History Congress 1960' में विन्ध्यवर्मा और सुल्हण पर प्रो० एच्० डी० वेलंकर का लेख।

किया। अर्जुनवर्मा का राजगुरु मदन अच्छा विद्वान् और कवि था और स्वयं अर्जुनवर्मा काव्यशास्त्र और अनेक कलाओं में निष्णात था।

अर्जुनवर्मा के सम्भवत कोई सन्तान न थी। अत उसका उत्तराधिकारी महाकुमार शाखा का देवपाल हुआ। उसके समय भी चौलुक्यों से सघर्ष चलता रहा। देवपाल के बाद क्रमश जयसिंह द्वितीय और जयवर्मा द्वितीय गद्दी पर बैठे। अर्जुनवर्मा द्वितीय और भोज द्वितीय का वर्णन हम्मीर महाकाव्य में है। जयसिंह चतुर्थ के समय अलाउद्दीन खिल्जी ने मालवे के परमार राज्य की समाप्ति कर दी। वागड के परमारो के राज्य की समाप्ति का श्रेय डूगरपुर राज्य के सस्थापक और उसके वशजों को है।

'परमारवशावली' मे परमारा की ३५ शाखाओ के नाम हैं—वावा, कूकडा, विराणा, हरिया, हूवड, नीवेडचा, बोडाणा, मुखेल, दायमा, दूगण, वाघोत, सिदायच, मोढसी, खीर, ऊमट, घाघू, भायल, गूगा, सोढा, साखला, जागा, जैपाला, सियोर, दुगोठिया, पायल, डोड, बोरड, पवार, घुरिया छाहड, पीथा, कूकणा, गेला और किंगवा। नैणसी की ख्यात मे ३६ नाम दिये हैं। उसके भामा, पेस, पाणीसवल, वहिया, वाहल, मोटसी, ठूठा, टेखल, ढल, कानमुहा, खैरा आदि अनेक नाम परमार वशावली मे नही है। नैणसी की ख्यात मे इसी तरह विराण, हरिया, नीवडचा, मुखेल, दायमा, दूगण, खीर आदि अनेक शाखाओ का अभाव है। वशभास्कर मे दी हुई ३५ शाखाए भी इसी तरह नैणसी की शाखाओं से किसी अश में भिन्न है।

नैणसी ने विशेष रूप से साखलों, सोढो, और भायलों के इतिहास पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जो यत्र-तत्र अशुद्ध होने पर भी पठनीय है। इस समय परमारों की मुख्य शाखाए परमार, सोढा, साखल, ऊमट और वारड हैं। सोढा और साखला अपने को धरणीवराह के वशज मानते हैं। ऊमट भी सम्भवत धरणीवराह के वश के ही हैं। वारड शाखा मे दान्ता के महाराणा हैं जो परमार वशी राजा धधुक के पुत्र कृष्णराज दूसरे के वशज

हैं। राजगढ और नरसिंहगढ़ के राज्य ऊमट शाखा के थे। सोढों की शाखाएं सिन्ध मे थी। बखतगढ ( मालवा ), मघवार ( मालवा ), बाघल ( हिमाचल प्रदेश ) बीजोल्या ( मेवाड़ ) आदि में परमारों के राज्य और जागीरें थी।

परमार वंशावली मे बीकानेर के पंवारों पर काफी प्रकाश डाला है जो इतिहास की दृष्टि से उपयोगी है। किन्तु किस राजा ने किस समय उनको जागीर दी यह गवेष्य है। बोलाउ, रातूसर, मावासर, बणीसर, भोजासर, पीरेर आदि ग्रामों के नाम इसमे आए हैं। वंशावली के लेखन के समय पंवारो के पट्टो मे ये गांव थे :—

| | |
|---|---|
| १. गांव राणासर | ६. जेतासर |
| २. रातूसर | ७. मालकसर |
| ३. कालासर | ८. जेतसीसर देवपालका |
| ४. भीवासर | ६. गांव घनोर ढाव्र |
| ५. भगवानसर | १०. भागसर की ढाव्र के दो भाग |

ठाकुर भोमसिंह के छोटे भाई कानसिंह के पट्टे के ३ गांव, तखतसिंह के २ गांव, चांदसिंह के ६ गांव, पेमजी के १ गांव, सूरजमलजी के २ गांव, नाथूसिंहजी के १ गांव, गूदडसिंहोतो के गांव आदि का वर्णन भी वंशावली मे है। सम्भवत: करणसला के नाथूसिंहजी के समय में इस वंशावली की रचना हुई। रचना समय अनिर्दिष्ट है, किन्तु इस उल्लेख के आधार पर रचना काल निश्चत किया जा सकता है।। दयालदास सिंढायच के परमारवंश-दर्पण का रचनाकाल पौष कृष्णा ३ संवत् १९२१ है जो बीकानेर की ख्यात के रचनाकाल से बाद का है।

कैप्टेन पोलेट ने सन् १८७४ (वि० सं० १९३१) मे, अर्थात् दयालदास से दस वर्ष बाद पंवारो के १८ गांवों और २७७४) रु० की रकम का उल्लेख किया है। किसी पंवार जागीरदार के पास उस समय पांच गाव से अधिक न थे। सोढो के पास दो गांव थे।

यह सब इतिहास की सामग्री धीरे धीरे लुप्त होती जा रही है। प्राचीन रेकड के रूप में इसे रक्षित करना अपना कतव्य समझते हुए इस्टीट्यूट इन ग्रथो को प्रकाशित कर रही है। परमार जाति का अतीत अत्यत गौरव का रहा है। अत उसके सत्य स्वरूप का कुछ आभास देने के लिये यह प्रस्तावना भी इन सन्दर्भों के साथ दी जा रही है। इसे पढ कर पाठक परमारो के विषय में अधिक जानने के लिये समुत्सुक हुए तो हम अपना कतव्य पूर्ण हुआ समझेंगे।

—दशरथ शर्मा

# परमार विषयक कुछ पठनीय सामग्री

| | |
|---|---|
| १. श्री धीरेन्द्र गांगुली— | हिस्ट्री आफ दी परमाराज् |
| २. श्री गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा— | राजपूताने का इतिहास, प्रथम भाग |
| ३. प्रह्लादनदेव— | पार्थपराक्रम व्यायोग: |
| ४. दशरथ शर्मा— | त्रिविध वीर जगद्देव ( राजस्थान-भारती, भाग ४, अंक ४, पृ. ४०-५१ परमारों की उत्पत्ति ( राजस्थान-भारती ) भाग ३, अंक २, पृ. २–८ ( उक्त दोनों निबन्ध इस ग्रंथ के परिशिष्ट रूप मे भी पृष्ठ ४८–५७ पर दिये गये हैं । ) |
| ५. प्रतिपाल भाटिया— | मालवे के परमार ( अधिनिबन्ध ) |

# सिंढायच दयालदास और उनकी रचनाएँ

राजस्थानी साहित्य की समृद्धि मे सब से बडा योग जैन और चारण कवियो का रहा है। जन विद्वान् तो अधिकाश त्यागी मुनि थे और कुछ गृहस्थ श्रावक भी दिगम्बर-सम्प्रदाय मे अच्छे साहित्यकार हुए हैं। उनका साहित्य निर्माण का उद्देश्य ज्ञान वृद्धि या धर्म प्रचार ही रहा है। वे किसी के आश्रित या साहित्य को आजीविका का साधन बनाने वाले नही थे, जब कि चारण कवि अधिकाश राजाओ, ठाकुरो आदि के आश्रित थे और आश्रयदाताओ के दिए हुए गाँव और द्रव्यादि से आजीविका चलाते थे। इसलिए उनका कविता करना एक पेशा सा हो गया था। इसका प्रभाव इतना अधिक पडा कि उनके घरो मे साहित्य निर्माण का वातावरण इतना अधिक बना रहता था कि उनके घर के बालक बिना किसी विशेष शिक्षण के कविता बनाने लगते थे। इसी कारण दोहे, गीत, कवित्त आदि फुटकर रचनाए सैकडों चारण कवियों की हजारो की सख्या में प्राप्त हैं। राजस्थान के सैकडो शूरवीरो, दानवीरो की यशोगाथाए चारणो की इन रचनाओ मे ग्रथित हैं। उनके रचित दूहा, गीत आदि हजारो फुटकर रचनाएँ मौखिक रूप से प्रचलित रहने के कारण भुलाई जा चुकी हैं यानि विस्मृति के गर्भ मे विलीन हो चुकी व होती जा रही हैं, पर लिखित रूप मे भी इतनी अधिक रचनाए[1] प्राप्त हैं कि उनकी सूची बनाना भी कठिन कार्य है।

---

१ बहुत सी रचनाए उन कवियो के वशजो के पास लिखी हुई होगी जिनको वे अनुदार वशज दूसरो को दिखाते भी नही। वैसे उन रचनाओ का इतना महत्त्व भी नही रहा, न उनको छिपाए रखने से लाभ ही है। वे पडी-पडी चूहो और दीमको का भोजन बन रही हैं या बन जायगी तथा घर के बालको व स्त्रियो द्वारा भी नष्ट हो जाने वाली हैं। कई बार तो यह

चारण कवियों का साहित्य बहुत विशाल है। पद्य के साथ गद्य में ख्यातें, वातें आदि भी उन्होंने काफी लिखी हैं क्योंकि आश्रय-दाताओं के इतिहास लिखने और मनोरंजन के लिए वातें कहना व लिखना ही उनका पेशा रहा है। इस शताब्दी में कवि राजा श्यामलदास का 'वीर विनोद' और रामनाथ रतनू कृत इतिहास[२] राजस्थान (प्र. सं. १६४८) राजस्थान के इतिहास के महत्वपूर्ण साधन हैं। इससे पूर्ववर्ती पद्य-बद्ध अनेकों ऐतिहासिक काव्य चारण कवियों के बनाए हुए प्राप्त हैं जिनमें 'सूरज प्रकाश',

---

भी सुना गया है कि उन्हे रद्दी कागजो के रूप में चूल्हे जलाने के काम में लाया जाता है और बच्चो की टट्टी उठाने तक के काम मे अनेक पत्र-कागज आते हैं। अत. आवश्यकता है कोई प्रभावशाली जाति-हितैषी चारण गाँव-गाव और घर-घर मे घूमकर इस नष्ट होती हुई साहित्य-निधि को सग्रहीत कर ले और मौखिक रूप मे जो भी साहित्य है उसे लिख लिया जाय। जो लोग हस्त लिखित प्रति देना नहीं चाहे उनकी नकलें, माइक्रो फिल्म और फोटो स्टेट करवा कर संग्रहीत करवाया जाय। सरकार भी इस परमावश्यक कार्य की ओर तुरन्त ध्यान दे।

२. तृतीय (सहायता) कविराजा दयालदासजी सिंढायच चारण बीकानेर निवासी से (मिली है) ये महाशय इतिहास विद्या मे राजपूताना के निवासियो में अद्वितीय थे, नव्वे वर्ष से अधिक इनकी आयु थी जिसमें सदा ऐतिहासिक वृत्तान्तों के सग्रह करने में तत्पर रहे और यद्यपि अंग्रेजी वा फारसी कुछ नहीं पढे थे और राजस्थान के अत्यन्त ऊजड़ भाग अर्थात् बीकानेर के राज्य मे रहा करते थे तथापि भारतवर्ष के इतिहास के उपरान्त ग्रीस, रोम और इंगलैंड के इतिहासों को भी कुछ-कुछ जानते थे। इन कवि-राजाजी ने इतिहास के कई ग्रंथ लिखे हैं, यदि वे छप जायं तो लोगो को बहुत लाभ हो। मैंने जोधपुर और बीकानेर के इतिहासों मे विशेष वृत्तान्त इन्ही के कथन और ग्रन्थो के अनुसार लिखा है। शोक है कि गत वैशाख मास में इनका शरीरान्त हो गया॥

'राजरूपक','वंश भास्कर' आदि तो प्रकाशित हैं। अनेक राज्यों की ख्यातें भी गद्य में चारणों ने लिखी हैं उनमें दयालदास के राठौड़ों के इतिहास संबंधी तीन ख्यात ग्रंथ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। दयालदास वर्षों तक इन ग्रंथों को लिखने रहे और उन्होंने प्राप्त सामग्री और जानकारी का बड़े अच्छे रूप में उपयोग किया है।

ख्यातकार के रूप में दयालदास सिढायच विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने राठौड़ों की ख्यात के अतिरिक्त 'देश दर्पण' और 'आर्याख्यान कल्पद्रुम' नामक दो और महत्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रंथ लिखे हैं जिनकी हस्तलिखित प्रतियां श्री अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर में है। राठौड़ों की ख्यात का मध्यम अंश, जिसमें राव बीकाजी से महाराजा अनूपसिंहजी तक का वृत्तांत है, दयालदास री ख्यात भाग २ के नाम से डा० दशरथ शर्मा द्वारा सम्पादित श्री अनूप संस्कृत लायब्रेरी से संवत् २००५ में प्रकाशित हो चुका है। इसका प्रथम और तृतीय भाग अभी अप्रकाशित[३] हैं। प्रकाशित अंश में बीकाजी से अनूपसिंहजी तक का वृत्तांत है।

'देशदर्पण' नामक ख्यात ग्रन्थ संवत् १९२७ में तयार हुआ। उसके संबंध में प्रारम्भ में ही लिखा है कि महाराजा सरदारसिंहजी के समय जसवंतसिंह की आज्ञा से इसकी रचना हुई। यथा—

हंस वंश कुल रट्ठवर, समरड निभय सुरेश।
राज करहू मरुधर रुचिर, श्री सिरदार नरेश ॥५॥
प्रबल उदयगिर नीकपुर, रवि मुहिपत सिरदार।
कवि पंकज प्रफुलित करण, अघतम हरण उदार ॥६॥
जेण वंश जैचन्द से, जन्मे अत जोधार।
तिन आगे हिन्दू तुरक, समरज लीन्हें सार ॥७॥

३ प्रथम में राठौड़ों की उत्पत्ति और तृतीय में सुजानसिंह से रत्नसिंहजी तक का वृत्तान्त हैं। अनूप संस्कृत लाइब्रेरी में ३६४ पत्रों की यह प्रति दो जिल्दों में है।

सादूल नृप के प्राणसम, सब मित्रन सिरताज ।
सामंद चित हीन्दाल सुत, जस गाहिक जसराज ॥८॥
निगमागम जानत सकल, सब विद्या परवीन ।
असै जसवत चतुर अत, कव प्रत आज्ञा कीन ॥६॥
पराचीन तहां ख्यात लख, भानुवंश के भेद ।
जसवंत आज्ञा तै जपै, अत किय सुगम अर वेद ॥१०॥
करौ ख्यात नृपतेस कुल, दिय आयस जिह वार ।
कव दयाल वर्णन करी, अपनी मत अनुसार ॥११॥
शुभ चिन्तक रिधकरण कुं, लिखनि बताई ख्यात ।
ज्युं मुख से परकाश कर, लघु दीरघ मुख बात ॥१२॥

अथ ख्यात जन्म यथा—

कहे संवत उगणीस के, सात बीस के साल ।
वरणी ख्यात विशेष वर, दर्पण देश दयाल ॥

इसमें बीकानेर के प्राथमिक राजाओं का सक्षिप्त वृत्तात है। परवर्ती राजाओं का संवतानुक्रम से दिया है और महाराजा रत्नसिहजी आदि का तो बहुत विस्तार से दिया है। बादशाही फर्मान, अंग्रेजो से सन्धि (सुलह) नामे आदि की नकलें और अनुवाद भी दिये हैं। अंग्रेजो से सन्धिनामे केवल बीकानेर के ही नही पर उदयपुर, जयपुर, जोधपुर, बूंदी, झालावाड़, कोटा, जैसलमेर, टौंक, भरतपुर, डूंगरपुर आदि राज्यो के भी दिये हैं। तदनन्तर बीकानेर राजवंश से संबंधित खांपो का संक्षिप्त वृत्तांत देकर गांवो की रेख और जमीन की विस्तृत सूची दी है। संवत् १६२७ की फौजबन्दी की याददास्त के बाद खर्च, खजाना, महसूल की भी जानकारी दी है।

दयालदास का तीसरा ख्यात ग्रन्थ आर्याख्यानकल्पद्रुम तो और भी अधिक महत्व का है। इसकी रचना संवत् १८३४ के भादवा सुदी १२ बुधवार को महाराजा डूंगरसिह के समय मे हुई। तीन भागो में इस ग्रन्थ

के रचे जाने की योजना थी जिसका उल्लेख करते हुए प्रारंभ में लिखा गया है—

"सो ये ग्रंथ का पूर्वार्द्ध मे तो केवल हिंद का वरणन हुवेगा अर इस ग्रंथ का उतरार्द्ध 'यवन आख्यान कल्पलता' मे कहा जावगा तथा आरिय भाषा के मत मे तो म्लेच्छ कहे जात हैं जिनका हिंदूभाषा से जिनकी भाषा नही मिलती है तथा हिंदूवा के धर्म से इनका धर्म व्यवहार भी गलत है। पच्छिम देश निवासी हैं सो म्लेच्छ कहे जात हैं जिसमे प्रथम हिन्दुस्तान के हिंदू राजाओं का वरणन करते हैं ॥१॥ दूसरे भाग में मुसलमानो का वरणन लिखा जावगा और तीसर भाग मे अंग्रेजों की व्युत्पति आगम लिखे जावेंगे।"

ग्रंथ के प्रारम्भ म राठोडों की वंशावली, फिर जचन्द से प्रारम्भ करके जोधपुर के महाराजा विजयसिंहजी तक का वृत्तात, रानियो व राजकुमारो की याददास्त और मारवाड राज्य के २२ परगने और उसके गावा की रेख आदि का विस्तृत विवरण दिया है। तदनन्तर बीकाजी से सरदारसिंह जी तक के बीकानेर के राजाओ का इतिहास है। अंत म बीकानेर राज्य की खापों एव ठीकाणों का हाल दिया है। मालूम होता है कि दयालदास इस महान् ग्रंथ को अपनी योजना के अनुसार पूर्ण नही कर पाये।

इसमें जयपुर के शव वैष्णवो के झगडे का हाल एव रतलाम, सलाना, सीतामऊ, जामवा, मावझरा, किशनगढ और गदर की याददास्त भी है। इसकी २३ पत्रो की प्रति अनूप सस्कृत लाइब्रेरी मे है।

माननीय गौरीशंकरजी ओझा न अपने बीकानेर राज्य के इतिहास मे दयालदास एव उनकी ख्याता के सम्बन्ध मे लिखा है—

"बीकानेर राज्य की विस्तृत ख्यात, जो दयालदास की ख्यात के नाम से प्रसिद्ध है और 'देशदर्पण' एव 'आर्य आख्यान कल्पद्रुम' के रचियता दयालदास का यहा कुछ परिचय देना अप्रासंगिक न होगा। अधिकाश प्राचीन रचनाओ मे उनके लेखको का कुछ न कुछ परिचय अवश्य मिलता

है, किन्तु दयालदास ने अपनी ख्यात के प्रारंभ अथवा अंत मे कहीं भी अपना परिचय नही दिया है। इससे तो यही अनुमान होता है कि वह अपनी प्रसिद्धि का विशेप अभिलापी न था। मारू चारण जाति की भादलिया शाखा की एक उपशाखा सिढायच है। ऐसी प्रसिद्धि है कि नरसिंह भादलिया को नाहड़राव पडिहार ने कई सिंहो को मारने की एवज में 'सिंहढाहक" की उपाधि दी थी, जिसका अपभ्रंश "सिढायच" है। इसी वंश में बीकानेर राज्य के कूविया गाव में वि० स० १८५५ (ई० स० १७९८) के लगभग सिढायच दयालदास का जन्म हुआ था। वह महाराजा रत्नसिंह का विश्वास-पात्र होने से राज्य संवधी कार्यों में भाग लिया करता था और इस प्रसग मे उदयपुर, रीवां आदि राज्यों में भी गया था। उसे इतिहास से बड़ा प्रेम था और वह बीकानेर राज्य का ही नही वाहर की भी कई रियासतों के इतिहास का अच्छा ज्ञान रखता था। महाराजा रत्नसिंह ने समय-समय पर उसका अच्छा सम्मान कर उसकी प्रतिष्ठा में वृद्धि की। अंग्रेज सरकार के साथ संधि होने के पीछे राजपूताना के राजाओं को अपने अपने यहां का इतिहास संग्रह करवाने की आवश्यकता पड़ी, तव महाराजा रत्नसिंह ने दयालदास को ही इस कार्य के लिए उपयुक्त समझ अपने राज्य का इतिहास तैयार कराने की आज्ञा दी। इस पर उसने प्राचीन वंशावलियां, बहियां, शाही-फरमान, प्राचीन कागज-पत्र, पट्टे, परवाने आदि संग्रह कर परिश्रम-पूर्वक बीकानेर राज्य का विस्तृत इतिहास लिखा, जिसको "दयालदास की ख्यात" कहते हैं। इसमे सरदारसिंह के राज्यारोहण तक का हाल है, जिससे कहा जा सकता है कि यह विक्रम संवत् १९०९ (ई० स० १८५२) के आस पास सम्पूर्ण हुई होगी। कर्नल पाउलेट ने अपने "गैजेटियर ऑव दि बीकानेर स्टेट" के तैयार करने मे अधिकतर इसी का आधार लिया है। इसके अतिरिक्त उस (दयालदास) ने वैद मेहता जसवंतसिंह के आदेशानुसार वि० सं० १९२७ मे "देश दर्पण" की रचना की। महाराजा डूंगरसिंह ने इन दो ऐतिहासिक ग्रन्थो से ही संतोप न कर उसे समस्त भारतवर्प की प्रान्तीय भापा में इतिहास लिखने की आज्ञा दी। इस पर

वि० स० १६३४ मे उसने "ग्राय ग्राख्यान कल्पद्रुम" की रचना की। दयालदास नब्बे से अधिक वर्षों की आयु मे वि० स० १६४८ (१८६१) के वैशाख मास मे काल कवलित हुआ। वह महाराजा सूरतसिंह, रत्नसिंह, सरदारसिंह और डूगरसिंह का कृपा पात्र रहा। उसके प्रपौत्र ग्रावडदान के पास इस समय भी बीकानेर राज्य की तरफ से मोकलेरा, वाछी और कूबिया गाव विद्यमान हैं।

दयालदास बडा योग्य और विद्वान व्यक्ति था। उसे इतिहास से बहुत प्रेम था। उसने बडे परिश्रम से पुरानी वंशावलियों, पट्टा, बहियो, शाही फरमानो और राजकीय पत्र व्यवहारो आदि के आधार पर अपनी ख्यात की रचना की, जिससे यह बीकानेर के इतिहास की दृष्टि से बहुत उपयोगी है। इसमे कई फारसी फरमानो की नागरी अक्षरा में प्रतिलिपि तथा अग्रेजी मुरासिलो के अनुवाद भी दिये हैं।"

दयालदास ख्यातकार के रूप मे तो प्रसिद्ध है ही पर वह सुकवि और टीकाकार भी था इसकी जानकारी बहुत कम लोगों को है। उसके रचित 'जस रत्नाकर' की दोनो प्रतियां अपूर्ण ही मिली है। पहली प्रति अनूप सस्कृत लायब्रेरी में है जिसमें केवल ६१ पद्य हैं। उसमे जयचन्द से लेकर बीकानेर के महाराजा रत्नसिंह तक का वर्णन है। बीच में कुछ अन्य कवियों के भी पद्य हैं। उसकी दूसरी प्रति जो मुझे मान्यवर डा० दशरथ शर्मा से देखने को प्राप्त हुई, उसके अनुसार यह ग्रन्थ काफी बडा होना चाहिये। नृप वश वर्णन नामक प्रथम प्रभाव मे ५७ पद्य हैं जिसमे रत्नसिंहजी तक का वर्णन है इसके बाद सूरतसिंहजी के अभिषेक का विस्तृत वर्णन है। इसके बीच म सगीत के संबंध में भी महत्वपूर्ण विवेचन मिलता है जिससे कवि की सगीत विषयक विशद जानकारी का परिचय मिलता है। सगीत चर्चा के बाद सभा वर्णन मे २ बाई मिसल और दो दाहिनी मिसल के सन्मुख की बांई और दाहिनी मिसल कविया और सचिवो की मिसल अर्थात् सभा में कौन कौन से सरदार कहां कहा

बैठते थे इसका विवरण दिया है। इसके बाद अभिषेक का विवरण दवावैत मे दिया है। फिर संघ सेनजी से लेकर महाराजा रतनसिंह के महलो का विवरण ११२ पद्यो मे लिखा है जहा ग्रन्थ का दूसरा प्रभाव समाप्त होता है। उसके बाद सीहोजी से लेकर रतनसिंह और लक्ष्मणसिंह के राजकुमारों का विवरण तीसरे प्रभाव के ५५ पद्यो मे दिया गया है। महाराजा लक्ष्मणसिंह महाराजा रतनसिंह के भाई थे और उन्ही के आश्रय मे कवि ने ये ग्रन्थ बनाये। इसके बाद संवत् १८८६ के पूगल युद्ध का विस्तृत वर्णन है जिसमे छओं ऋतुओ के युद्ध रूपक विशेष महत्व के है। उसके बाद युद्धमय नवरसो का वर्णन है। यह ग्रन्थ का छठा प्रभाव है। तदनन्तर संवत् १८८८ से १८९३ की तीर्थ यात्रा का प्रकरण ११३ पद्यों वाले सातवें प्रभाव मे है। फिर १८९७ मे सरदारसिहजी के बीकानेर आने व दिल्ली में लाट साहब की मुलाकात, फिर शीशोदियों का वर्णन करके जोधपुर का वृत्तात गद्य मे लिखा गया है। उसके बाद राव जोधाजी से लेकर महाराजा सरदारसिह जी तक की जन्म पत्रियां और जन्म सवत् के पद्य ग्रन्थ के चौथे प्रभाव मे प्राप्त होते हैं। फिर सरदारो और कामदारों की पीढ़ियों के नाम दिये हैं। उसके बाद ग्रन्थ अपूर्ण रह जाता है। इस ग्रन्थ से यह स्पष्ट है कि जिस प्रकार दयालदास ने गद्य मे ख्याते लिखीं उसी प्रकार पद्य मे बीकानेर के महाराजाओ का इतिहास वृत्तांत पद्य बद्ध 'जस रत्नाकर' मे देने का प्रयत्न किया है।

दयालदास की दूसरी पद्य रचना 'सुजस बावनी' है जो महाराजा लक्ष्मणसिह के सुयश वर्णन में लिखी गई है। इसमें ५३ पद्य हैं। पद्यों मे जो आलंकारिक वर्णन है उन अलंकारो का विवरण गद्य या टीका के रूप मे दिया गया है। इससे कवि की काव्य-शास्त्र संबंधी जानकारी का अच्छा परिचय मिलता है। अनूप संस्कृत लाइब्रेरी की प्रति नं० १०८ से विदित होता है कि मूलतः कवि ने सुजस छत्तीसी बनाई थी उसके बाद १७ पद्य और जोडकर इसे बावनी बना दिया है। प्रति नं० १०८ में इसीलिए

इसका नाम 'सुजस छत्तीसी' लिखा मिलता है जब कि डा० दशरथजी से प्राप्त प्रति में सुजस बावनी मिलता है। प्रथम प्रति मे अलंकार विवेचन वाली टीका नहीं है, दशरथजी वाली प्रति में वह टीका है। दोनो प्रतियो मे कुछ पाठ-भेद भी हैं। बावनी का आदि अन्त दशरथजी की प्रति के अनुसार आगे दिया जा रहा है। गद्य विवेचन का भी थोड़ा नमूना दिया जा रहा है।

अथ सुजस बावनी माहाराज श्री लछमणसिंघजी री लीलने—सढायच दयालदास कृत।

आदि—

दुहा—सिव गणपत अंबा सीं'र[1], सुरसत[2] विस्नु सकाज।
रतनु सोभा राठउर, कीज उक्त दराज ॥१॥
सूरतसिंह सीजा समद, भूप रतन लघु भ्रात।
पाता लखमण पाल गर, बाता सुजस विख्यात ॥

दुहा सोरठा—बृवीया न हुवै बखाण, वाखाणै सचीया सु द्रव।
जस गाह्कि घण जाण, लछमण[3] दाखै लीभिया ॥

यथा—बृवीया हुवै वाखाण, ए जी शब्द है यामैं अरथ ऐसो भी स्याम है। बुवणो नाम दैणो जात वाखाण नाम जस सो न होय। अर द्रव की मजत कीयें तें वाखाण नाम जस होय। सो याको मुख्यारथ दुजो है। सो यथा वाखाण शब्द को भिन्न पद कियें तें।

अंत—पद पंकज सेवे प्रगट, गिर प्रत मस्त दियाल।
अरक धंम लखमण उचित, पात सरण प्रतिपाल ॥५०॥
'लखमण जस' सुरलोक[4] मे, पृथ्वी सुरग पयाल।
सुजस बावनी[5] ग्रन्थ शुभ[6], दाखी सुकव दयाल ॥५१॥

---

१ सिंधर २ सरसुत ३ कैसरसमा सुत सुरतवो ४ वसु ५ छतीसी ६ से (मूलमात्र पाठ भी है)।

इति श्री सुजस बावनी माहाराज श्री श्री १०८ श्री श्री लखमणसंघजी री संढायच दयालदास कृत । पत्र ११, पुस्तकाकार, टीका सहित, अलंकारों के स्पष्टीकरण महित । ( प्रति नं० १०८ से स्पष्ट है कि प्रथम छत्तीसी बनाई पीछे बढाई है ) ।

अनूप संस्कृत लाइब्रेरी की उपरोक्त राजस्थानी विभाग की प्रति. नं० १०८ मे दयालदास रचित "अजस इक्कीसी" आदि रचनाएं भी हैं । 'अजस इक्कीसी' का प्रारम्भिक पत्र प्राप्त न होने से आदि के १४।।। पद्य अप्राप्त हैं । अंतिम पद्य इस प्रकार है—

अंत—जस नृप को भटकौ अजस, निरवायो जुत नेम ।
कव प्रवंध वर्णन करी, अजस इक्कीसी ऐम ।।२२।।

इस प्रति के पत्र कुछ कट भी गये हैं । अन्य रचनाओं मे वैद हिंदूमल का गीत पद्य ४, दुहा श्री हजूर साहिबां रा, कूरम (जुहारो) सरण राख्यो जिन मुदेरा दोहा १२, दुहा जोधपुर रा धणी राजा तखतसिंह जी (डूंगजी कछवाहे रो) अंग्रेज नु पकड़ायो.........था पाछो डूंगरसिंह ने अजमेर सुं जोधपुर.........इण भाव रा दुहा ५, ।

अनूप संस्कृत लाइब्रेरी की प्रति नं० ५१ मे दयालदास रचित हरजस, राव राजा बनेसिंह रा कवित्त, तथा नव रत्नां रे नव कविता री टीका के १४ पत्र संवत् १९२२ के लिखे हुए हैं । प्रति नं० २०५ मे महाराजा जवानीसिंह के कुछ दोहे दयालदास के रचित हैं । प्रति नं० १४१ में बीकानेर के राठोडो के गीत और पंवारा री पीढियां हैं । नवरत्न कवित्त की टीका का आदि अन्त इस प्रकार है ।

अथ नव रतनां रा नव कवित जात छप्पय तिण री टीका लिख्यते ।

दोहा—धन्वंतरि छिपनक, अमर घट खपर वैताल ।
वररूचि संकू वराह मिल, कालदास नवलाल ।।

इन दूहै की टीका—उजीण रै राजा पवार श्री भोजराजा जिए री सभा मे नव पडित नामीक हुता । जिए रा इए दूहै म नाम जताया । याद नामा री ।

१ धन्वतर, २ छिपनक, ३ घट खपर, ४ वैताल, ५ अमर, ६ वररुचि, ७ सकु, ८ वराहदेव, ९ कालिदास । इति नव पिडत नाम ।

दोहा—त्रिमलचित जाचक सिथल, मूढ तपस्वी भ्रात ।
त्रपन बुद्धि तिय नर पती, ग्यानरत नव वात ॥

टीका—नव पडिता रा नव बोल । जिए पर नव कवित नीन रा वणाया । अथ नव बोल याद ।

भ्रात—भरु सन्यास धम भ्रगीकार करके धन को सग्रह करे सो जगत मे मूख पद कु प्राप्त होवे ।

इति श्री नव रतना रा कवित तावी टीका चारण दयालदास कृत सम्पूण । सवत् १९२२ काती सुदी ९ सनवार लिखता दयालदास पत्र १२ इसके बाद २ ६रजस भ्रौर महाराजा बनसिंह का कवित्त दयालदास कृत है । कुल पत्र सख्या १४/प्रति न० ५१/

इस प्रकार सिढायच दयालदास एक महान् साहित्यकार थे । उ होंने अपना सारा जीवन अध्ययन, सग्रह और लेखन मे विताया जो उनके प्राप्त साहित्य से स्पष्ट है । इतना विशाल भ्रौर महत्वपूण लेखन बहुत कम व्यक्ति ही कर पाते हैं ।

अनूप सस्कृत लाइब्रेरी मे अप्राप्त दयालदास को एक रचना 'पवार वश दपण' के भडारकर ओरियन्टल इन्स्टीटयूट, पूना में प्राप्त होने की सूचना मुझे करीब २५ वष पहले मिली थी भ्रौर उसी समय उसकी प्रति नकल करवा कर मित्रवर दशरथजी को देदी थी, पर वह नक्ल कही इधर उधर होगई, इसलिए गत वष उस प्रति को दुबारा मगा कर नकल करवाई भ्रौर उसे सम्पादित करके प्रकाशित करने के लिए दशरथजी को भेज दी ।

अनूप संस्कृत लाइब्रेरी की प्रतियों को देखने पर 'पंवार वंश दर्पण' के कुछ पद्य मिले उनके पाठ भेद ले लिये गये हैं। ऐतिहासिक भूमिका आदि दशरथजी ने लिख कर इस ग्रन्थ की उपयोगिता बढा दी है। और अपने २५ वर्ष पहले का विचार व प्रयत्न इस रूप मे सफल होते देखकर मुझे हर्ष होता है।

दयालदास के जीवन चरित्र की विशेष घटनाएँ और उनका चित्र प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया पर सफलता नही मिली। जिस महान् साहित्यकार को हुए १०० वर्ष भी नही हुए उसकी जीवनी और रचनाओं के संवध मे भी हमें पूर्ण जानकारी नही मिलती यह वास्तव मे दुःख का विषय है। हम अपने साहित्यकारो की महान् देन को कितनी जल्दी भूल जाते हैं इसका यह ज्वलंत उदाहरण है।

—अगरचंद नाहटा

श्री दयालदास सिंढायच सम्बन्धी एक गीत श्री सुरजनसिंह से प्राप्त हुआ है जिसे यथावत् यहां दिया जा रहा है —

### गीत दयालदास सिंढायच रो
### ( मोतीसर किसनजी रो कहियो )

## गीत साणोर

लगी भूल जरनार द्याल्या गु नाग कानरी,
तांन निगगार तोपार ताना ।
तथा धणि भार बागार दूयाला तने,
रीझ गुन पूज सिरदार दाता ।।१।।
म थ पदवेस गु पम फलस रल गु न
भा ग गवेस ब्रव मल मानें ।
धमी घर देस रानेस गुरजस यगो,
छपे गजनेस रतनेस पाणें ।।२।।
हाक पत्र नर्बाश पणारे हवेली,
गुपन नम ग्रारे गुमर सीना ।
इण तरे सले सुरजनसहर ऊपारे,
पार गुन पारों मान पीना ।।३।।
पार मो दाम धिदाम हौले धपर,
दान सौगी पद्दा भाव गीयो ।
सिगादप वन धारा कौ सिरोतति,
करद सिर गाम धोराग ररो ।।४।।
[illegible] गाना । मा ।। ठौ उजेल
[illegible] पंडन भद्दो [illegible] ।
[illegible] रात्र [illegible] ,
[illegible] ।।५।।

सिढायच दयालदास कृत

# पंवार वंश दर्पण

श्रीगणेशायनमः ॥ अथ पवार वंश दर्पण । सिढायच दयालदास कृत लिख्यते ॥

दोहा

वीणा धारन कर विमल, जय सागर सुर भाव ।
हंसारूढ दारद हरो, सारद करो सहाय ॥ १ ॥

कवित्त

मद जल स्रवत मधुप, [illegible] गज मुख सुखमा मय ।
सिद्धिदाता [illegible] सीर्ष [illegible] [illegible] ॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] निधान निधि [illegible] [illegible] [illegible] ॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] विघन हर सुमन [illegible] ।
[illegible] नाम [illegible] महिमा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥

दोहा

[illegible] [illegible] के [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] पवार [illegible] ॥

असुर संहारनखिल अवनि, मुनिवर उपजी मन्न ।
किय वशिष्ट तहां क्षत्रि कुल, पुरुष च्यार उत्पन्न ॥
चालुक अर चहुवान वर, परमारहु परिहार ।
किय वशिष्ट तहां क्षत्रि कुल, सवला पन दत सार ॥

कवित्त छप्पय

अनल कुंड उत्पन्न पुरुष[1] परमार प्रगट्टिय ।
प्रवर पंच तहं प्रगट थिरू वछ गोत्र सुतट्टिय[2] ॥
माध्यंदिनि[3] शाखा प्रमाण जाके जग जाहर ।
कुलदेवी ताकी कहाय शच्याय नाम सुर ॥
जिण कुल अजीत लोभी सुजस सुभट सिद्ध अवसाण रो ।
उजवाल विरद परियां इता खाटण सुजस खुमाण रो[4] ॥१
पल्ल वेणु जिण वंश प्रथू प्रिय व्रत्त प्रमाणहु ।
सुरपति मन्मथ सबल धौम्य पद शक्र सुजानहु ॥
विनयपाल वरवीर देव पालग जगरक्खहु ।
दुनीपाल नरपाल अवनिपति नरियंद अक्खहु ॥
जिण कुल अजीत लोभी सुजस सुभट सिद्ध अवसाण रो ।
उजवाल विरद परियां इता खाटण सुजस खुमाणरो ॥२॥

---

१. पोहव २. पुयट्टिय ३. मारधंघ
४. वाराह वरण जिह वंस पर सुपह भए असरण सरण ।
तिन वंस सिवो मधुकर तनय, हित जुत कवि दारद हरन ॥१॥

नरिंदपाल नरनाह जासु पचान सु जाहर ।
नृप परूर तह निडर थिरु गँगपाल सुथाहर ॥
रत्नकेत रिमराह काम जित जास अनकल ।
तेजपाल सुत तुग सुवन गयपाल सु मव्वल ॥
जिण कुल अजीत लोभी सुजस सुभट सिद्ध अवसाण रो ।
उजवाल विरद परिया इता खाटण सुजस खुमाण रो ॥३॥

राजपाल सुत राम धरम अगद व्रत धारी ।
अखैराज सद मत्त सोम काटन जग सारी ॥
दुनीपाल नरसिंध सुतन महिपाल सकारण ।
विनयपाल वरवीर देव पालग तह दारुण ॥
जिण कुल अजीत लोभी सुजस सुभट सिद्ध अवसाण रो ।
उजवाल विरद परिया इता खाटण सुजस खुमाण रो ॥४॥

धमगिद्द नृप सधर अवनिपति भये वीर अति ।
विहद धरण वाराह महीपति भये सुदृढ अति ॥
किए वट नव कोट अवनि नव भ्रात सु अप्पिय ।
दिय अनेक तिह दान करिंद कविजन के कप्पिय ॥
जिह कुल अजीत लोभी सुजम मुभट सिद्ध अवसाण रो ।
उजवाल विरद परिया इता खाटण सुजस खुमाण रो ॥५

कवित्त प्राचीन राना धरणीवाराह ने अपने भाइयों को नवकोट प्रसन्न होके दिये जिस समय के ।

कवित्त

मंडोवर सावंत हुवो अजमेर अजैसू ।
गढ पूंगल गजवंत हुवो लुद्रवै भाणभू ॥
भोजराज धर धाट हुवो हांसू पारक्कर ।
अल्ल पल्ल अरवुद्द भोज राजा जालंधर ॥
नवकोड किराडू संजुगत थिर पंवार हर थप्पिया ।
धरणीवराह धर भाइयां कोट वांट जू जू किया ॥६॥
नृप वराह के तनय धार गिर[1] भये धरणिपत[2] ।
धाहड नृप ताकै सधीर दिय सकव कोड दत ॥
धीरसेन सत धरन, पोपसेनो[3] नृप पावन ।
लखनसेन लंकाल नृपति वुधसेन गिनावन ॥
सुदता[4] अजीत लोभी सुजस सुभट सिद्ध अवसाण रो ।
उजवाल विरद परियां इता खाटण सुजस खुमाण रो ॥७

उज्जयनी के राजा वुधसेन के जेष्ट पुत्र कलिंग हुआ सो वडा प्रतापी हुवा। भारतवर्ष के वहुत से राजा इसके अधिपत्य में थे जिस विषय का प्राचीन कवित्त।

कवित्त

दइ दिल्ली तंवरां, दइ कंनोज राठोरां ।
संभर दइ चह्वाण दई पाटण चावोडां ॥

---

१. गीत २. धरणपत ३. पहपसेनह

४. खित कालसेन श्रीखंड जिम, सकव व्याल रखिय सरण ।
तिन वंस सिवो मधुकर तनय, हित जुत कवि दारद हरण ॥५॥

मेदपाट गहलोत दई गुज्जर सोलकी ।
दै नरवर कछवाह सूर हिमकर कर साखी ॥
चारण कच्छ दीवी करग भाटा पूरब भावही ।
वन गये कलिग वैराग्य धर गिरिजापति माला गही ॥८॥

कालसेन सुत इन्द्र[1] अवनिपति[2] भये वीर अति ।
चित्रागद जाके विचित्र महिपती सुदृढ मति ॥
जासु सुतन[3] जगजान सेन गधर्व सकारन ।
सुतन वीर विक्रम नरेश पर दुख निवारन ॥
जिण कुल[4] अजीत लोभी सुजस सुभट सिद्ध अवसाण रो ।
उजवाल विरद परिया इता खाटण सुजस खुमाण रो ॥६

जिह[5] सु वीर विक्रम सुजान[6] पर दुख सु कट्टिय ।
जिह सु वीर विक्रम नरेश थिर कीर्त्ति सुथट्टिय ॥
जिह सु वीर विक्रम नरेश शक वध नरेश्वर ।
जिह सु वीर विक्रम सुजान वर दाय कीर्त्ति वर ॥
दत अयुत उदक कविजन[7] दियव सुभट सिद्ध अवसाण रो।
उजवाल विरद परिया इता खाटण सुजस खुमाण रो ॥१०

---

१ इद्रसेन नृप २ अवंत ३ सुवन
४ दन मुह मणि पारस दियद, विदव क्रीत ग्रयह वरण ।
तिन वस सिवी मधुकर तनय, हित जुत कवि दारद हरन ॥६॥
५ जिनह ६ नरेश
७ गन दियद धर इदु लग जस हरण, तिन हि ॥४॥

सुतन[1] वीर विक्रम नरेश विक्रम चरित्र वर ।
भय उजासु भूपाल धीर महिपाल भयउ[2] धर ॥
मधु पालग जग मुकुट सुवन तह[3] चंद चंद सम ।
शील ध्वज तहं सुतन[4] देव जोगी इंद्रिय दम ॥
सुत तनहसेन[5] सिहल सुपह सुभट सिद्ध अवसाण[6] रो ।
उजवाल विरद परियां इता खाटण सुजस खुमाणरो ॥११

भोज उदयकरण[7] भय अजेय जहं[8] देव करण जप ।
सत्यसेन तह सुतन[9] अवनि गज वाजि कविन अपि ॥
सुतन जासु शिव सुपह शालिवाहन सुरपति सम ।
राजहंस हरवंशसिघ राजह तिह संभ्रम ॥
मधुजल[10] वुधायच नृपति महि सुभट[11] सिद्ध अवसाण रो ।
उजवाल विरद परियां इता खाटण सुजस खुमाण रो ॥१२

## कवित्त जगदेवजी का

जिनह जोध जगदेव नद आदित्य नरेश्वर ।
जिनह जोध जगदेव वीर वर दाय कीर्तिवर ॥

---

१. सुवन २. धुरंधर ३. हित ४. सुनहु ५. भएउ
६. कहत भोजहित दन करण ।
तिन. हि. ॥५॥
७. उदयकरण नृप भए ८. जिहं ९. सवन १०. मधुभल्ल
११. मह वाव संघ ताके वरण ।
तिन. हि. ॥६॥

जिनह जोध जगदेव अवनि हय गय कवि अप्पिय ।
जिनह जोय जगदेव शीष ककालि समप्पिय ॥
सिधराव[1] मान खडन कियव सुभट सिद्ध अवसारण रो ।
उजवाल विरद परिया इता खाटण सुजस सुमाण रो॥१३

जेण रीत-जस काज करन मुख दशन- उखारे ।
केकीध्वज जस काज धार करवत शिर धारे ॥
हातम शिर निज हत्थ काट दरवेसा अप्पे ।
शिविर भूप जस काज करग निज तन पल कप्पिय ॥
जाणणो गुणा लोभी सुजस भापा पट् रस भेवजी ।
शिर काट भाट ककालि दिय जेण रीति जगदेवजी ॥१४

जेण रीति दद्धीच अस्थि सुरपति को अप्पिय ।
विशकर्मा जिण वार थोक तिह वज्र सुथप्पिय ।
नरवध दीधौ नैण रोप उर लाय न रचन ।
सोनग ,काय शरीर कमध कर दानो कचन ॥
जग माझ वस्तु राखी न जिह दाता क्यू न अदेवजी ।
जस काज काट ककालिन दियो शीष जगदेवजी ॥१५

जिनह[2] भूप जगदेव सुतन पातल सुरपति सम ।
भए अर्जे भूपाल सोढ भूपति है सभ्रम ॥

---

१ सु दतार नहन जगदेव पण विदुपण अन भूपत वरण ।
तिह वस सिवो मधुकर तनय, हित जुत कवि दारद हरन ॥७॥
यहा से नीचे लिखे तीन कवित्त भिन्न पाठ वाले मिलते हैं —

२ जिनह भूप जगदेव सुतन पातल सुरपत सम ।
रानो निहगुन राज भयेउ लाखन तिह सभ्रम ।

विजैपाल महिपाल जींदरावह तिह जानहु ।
समरथ सुत भए सिह महिपत सुत श्याम सु मानहु ।।
जिण कुल अजीत लोभी सुजस सुभट सिद्ध अवसाण रो ।
उजवाल विरद परियां इता खाटण सुजण खुमाण रो।। १६
हिरण कंठीर शिव राज सुतन तिह सोम सकारण ।
खींमकरण सुत राम भोज तह दारद मारण ।।

---

जस लाखक पुन जवर जिनह लख धीर सुजानहु ।
कयद संघ तिह कवर, प्रगट संघन सु प्रमानहु ।
सुत जेन नाम हमीर सुन, विघ जुत नृप श्री पुरवरण ।
तिन वंस सिवौ मधुकर तनय, हित जुत कवि दारद हरण ।।८।।
माहथ राय जग मुगट जिनह राघव जग जाहर ।
करमचंद तिह कवर थपेउ पंचान सु थाहर ।
मालदेव सेना अमाप सादूल सीर जिय ।
रायसाल जगरखन गहर जूझार सु गज्जिय ।
जग रूपसंघ जग रखन जस वखत भ्रात लघु निहवरन ।
तिन वस सिवौ मधुकर तनय, हित जुत कवि दारद हरण ।।९।।
जस अथाह जगरूप सुवन सुरतांन सकारन ।
जयतसिंघ तिह जवर महन चित रोर सुझारन ।
कीत सुवर केहर कंठीर कवजन अघर कटिय ।
महन मोझ माधव मान, धिर कीत सुथटिय ।
सुदतार सुवन पट जास जग सकव वृदं रक्खसरण ।
तिण वस सिवो मधुकर तनय, हितजुत कवि दारद हरण ।।१०।।

इति श्री पमार सिवदांनसिघजी री वंसावली रा कवत सिढायच ल जी रा कह्या ।

अनूप संस्कृत लाइब्रे री, वीकानेर, राजस्थानी विभाग प्रति नं. १४१

समरशाह शतसेन भए द्विज शील सुभारी ।
धीर देव शत धरन अवनि सिंह है अवतारी ॥
जिण कुल अजीत लोभी सुजस सुभट सिद्ध अवसाण रो ।
उजवाल विरद परिया इता खाटण सुजस खुमाण रो ॥ १७

सिंहल देव सुजाणसेन रूपह तिह सभ्रम ।
दीपसेन चित उदधि देव आशल इन्द्रिय दम ॥
चदसेन जयचद मुड जल अग सुजानहु ।
उदैचद शिवराज भारमल भीम सु मानहु ॥
सुत ता अजीत लोभी सुजस सुभट सिद्ध अवसाण रो ।
उजवाल विरद परिया इता खाटण सुजस खुमाण रो॥ १८

खीमकरण गुणराज कामसी भीम वखाणहु ।
खेम भूप अखराज जवर रतनाकर जानहु ॥
ज्वान भान जसपाल जाम ऊदल सुत जाहर ।
लखनसेन लकाल जवर कंदल तै थाहर ॥
जिण कुल अजीत लोभी सुजस सुभट सिद्ध अवसाण रो ।
उजवाल विरद परिया इता खाटण सुजस खुमाण रो ॥ १९

साघण रावत सवल सुतन हमीर सकारण ।
जिणरै हार्पों जवर मोज अघ दारद मारण ॥
मेंपराय जग मुकुट सुतन रघुपति सुरपति सम ।
कर्मचद तं कवर सवल पचाण सु सभ्रम ॥

जिण कुल अजीत लोभी सुजस सुभट सिद्ध अवसाण रो ।
उजवाल विरद परियां इंता खाटण सुजस खुमाण रो ॥२०

नाथ मालश्री नगर जिनह शादूल सु जानहु ।
रायशाल जसरखन मेर मन केहर मानहु ॥
जस गायक जगरूप जिनह सुलतान सुजाहर ।
जैतसिंह तैं जबर थये गूदर तैं थाहर ॥

शिरदार भयउ ताके सुतन सुभट सिद्ध अवसाण रो ।
उजवाल विरद परियां इतां खाटण सुजस खुमाण रो ॥२१

सांमदचित्त अजीत करण दत रो अधिकाई ।
जत रो गोरख लखन शील गंगेव सवाई ॥
सांमदचित्त अजीत अवनि कविपूरण आशा ।
.......................................... ॥

सुदतां अजीत लोभी सुजस सुभट सिद्ध अवसाण रो ।
उजवाल विरद परियां इतां खाटण सुजस खुमाण रो॥२२

जस गायक अघजीत पाल करणा कवि पातां ।
जस गायक अघजीत वसू राखण जस वातां ॥
जस गायक अघजीत वाच दरवास विचक्खण ।
आच करण दत्त उछिट राज इल नामा रक्खण ॥

जाणगर ज़िको लोभी सुजस भाषा षट रस भेव रो ।
सुदतां अजीत महिमा समंद जो पोतो जगदेव रो ॥२३

जेण वश विक्रम नरेंद्र शकावन्ध नरेश्वर ।
जेण वश पवार भोज सुजईड सुरेश्वर ॥
जेण वश नृप मुज थिरू जग कीरति थप्पिय ।
जेण वश जगदेव शीप ककालि समप्पिय ॥
जिण कुल अजीत लोभी सुजस सुभट सिद्ध अवसाण रो ।
उजवाल विरद परिया इता खाटण सुजस खुमाण रो॥२४

अनल कुड उत्पन्न कोम क्षत्रिय वशिष्ट किय ।
अरबुद धार उजीण देव मुरथान राज दिय ॥
पिड शत्रु न किय प्रलय कोम परमार कहाये ।
पुनि वाराह पुराण गिरा श्रुति व्यास जु गाये ॥
जिण कुल अजीत लोभी सुजस सुभट सिद्ध अवसाण रो ।
उजवाल विरद परिया इता खाटण सुजस खुमाण रो॥२५

इति श्री परमार वश दर्पण सिढायच दयालदास खतसीयोत गाव कुपिये के निवासी ने बनाया सम्पूर्ण हुवा ।

ठाकुरा राज श्री अजीतसिंहजी खुमाणसिंहोत गाव नारसैर ठाकुरा की आज्ञा से बनाया पवारा की पीडिया ८८ मो पचीस की उजरता धीरता का वर्णन किया । मिती पौष कृष्ण ३ सवत १६०१ का ।

# पंवार वंशावलि

अथ पंवारों की वंशावली की वार्त्ता लिख्यते ।। वशिष्टजी नें म्लेच्छों के संहार के निमित्त आवू पर्वत पर अनल कुण्ड सें क्षत्रियों की च्यार जाति उत्पन्न कीई उनकी यादगीरी—

१. ब्रह्म चौलक्य जिसका सोलंखी जिनकी सोले खापां प्रसिद्ध है ।

२. दूसर परमार जिसकी शाखा पैंतीस हुई ।

३. तीसरा परिहार जिसकी शाखा छव्वीस हुई ।

४. चोथो चहुवाण जिसकी शाखा चोवीस हुई ।

पंरमार का वत्स गोत्र पंच प्रवर माध्यंदिनी शाखा वाजर लेही ( वाजसनेयी ) संहिता कात्यायनी सूत्र और कुलदेवी गच्याय है । जिस परमार वंश में राजा पल्ल हुवा वहां सें पीडिया लिखी है—

१. परमार वंश में
२. राजा पल्ल हुवा
३. राजा वेणु
४. राजा प्रथु
५. राजा प्रिय व्रत
६. राजा सुरपति
७. राजा मन्मथराय
८. राजा धौम्यपद
९. राजा लघु सुरपति
१०. राजा विनयपददेव
११. राजा देव पालग
१२. राजा दुनीपाल
१३. राजा नरपाल
१४. राजा नरसिंहपाल
१५. नन्दपाल राजा
१६. राजा पंचायन
१७. पुरु खा राजा
१८. राजा गंगपाल

१६ राजा रत्नकेतु
२० राजा कामजीत
२१ राजा तेजराय
२२ राजा तुंगपाल
२३ राजा गयपाल
२४ राजा राजपाल
२५ राजा रामपाल
२६ राजा धर्माङ्गद
२७ राजा अर्सराज
२८ राजा सदमतराय
२६ राजा सोमपाल
३० राजा दुनीपाल
३१ राजा नरसिंह
३२ राजा महीपाल
३३ राजा विनयराज
३४ राजा देवराज
३५ राजा लघु धर्माङ्गद
३६. राजा धरणीवाराह

इस राजा धरणी वाराह के नव भाई और हुये उन्हो के नव कोट प्रसन्न होके दीये थे जिनकी यादगीरी—

गढ मडोर सावतसिंह को दीया
अजमेर अजैसिंह को दीया
गढ पूगल गजमलजी को दीया
गढ लुद्रवो भाण को दीया
जोगराज को घाट दीया
हासू को पारकर दीया
अलसी को पलू दीया
पालणसी को अर्बुद दीया
भोज को जालोर दीया
राजसी को किराडू दीया
राजा धरणी वाराह
अवती का इसके पुत्र तीन

३७ राजा धार गिर अवती
३७ इससे छोटा सोढा उसका शाखा सोढा कहाया तृतीय पुत्र शाखला इसकी सन्तान शाखला कहाते है—
३८ राजा धाहड धार गिरि का
३६ राजा धीरसेन
४० राजा पोपसेन
४१ राजा लखनसेन
४२ राजा बुधसेन
४३ राजा कालसेन
४४ राजा कलिङ्गदेव
४५ राजा इन्द्रसेन
४६ राजा चित्राङ्गद
४७ राजा गन्धवसेन
४८ राजा विक्रमादित्य
४८ भाइ भर्त्तरी
४८ खवासणया वेताल
४८ वाई मैणावती बगाल के राजा को पर-

१ भाई उदयसिंह
१ भाई ईन्दो
१ भाई नांपो
१ भाई वीको
१ भाई मैणसी
१ भाई जेठमल्ल
१ भाई कलजी
१ भाई रूपसी
१ भाई हांपा

११६ मैंपोजी जिसको अजमेर का पट्टा मिला उनके दोय छोटे भाई थे
१ भाई कांवल
१ भाई जोवराय

१२०. रघुनाथजी जिसके भाई दोय थे
१ भाई डूंगरसी
१ भाई किसनजी

१२१. कर्मचन्दजी रघुनाथोत जिसके भाई च्यार थे
१ भाई वैरीगाल
१ भाई पृथिवीराज
१ भाई गोकुल
१ भाई भोजराज

१२१. कर्मचन्द के पुत्र ५ हुये
१ पंचायरण
१ जगमाल
१ चूंडो
१ मेरो
१ सांवलदास

१२२. पंचायरण कर्मचन्द का जिसने पचेवर वसाई उदयसिंह वहां रहा

१२३. मालदे पंचायरण का जिसने मालपुरा वसाया राजा पदवी पाई उसके पुत्र ५
१ कलजी पचेवर में हुवा उनकी सन्तान वहां ही रहे
१ सांगजी उनकी सन्तान केकिडीया नगर में रहते हैं—
१ आशकरण १ शादूलजी
१ चन्दसेन

शादूलजी मालदेव के पुत्र उन्होंने श्री नगर में राज्य कीया जिसके ग्राम २७ थे

१२५. रायसल शादूलोत हुवा— इसके नव पुत्र थे—उन्होंके नाम—
१ केशरीसिंह १ फतेसिंह
१ झूझारसिंह १ अनोपसिंह
१ गजसिंह १ अजवसिंह
१ अनतसिंह १ भक्तसिंह
थाड पनवाड रहा—
१ कुश्यालसिंह

१२६ पीठी में केशरीसिहजी हुये उनका भाई झूझारसिहजी जिनका पुत्र राजरूपजी गाव ववोरी इलाके मेवाड के मे रहे—
केशरीसिहजी के दूसरे भाई भक्तसिहजी जिनके पुत्र जोधसिहजी—
मानसिहजी
यह वीकानेर आये उनको श्री दरवार मे वोलाउ ग्राम मिला—
अजवसिहजी रायसिलोत गावका कावँरा—
इनके पुत्र गोकुलदासजी आया उनको श्री दरवार से गाव रातुसर दीया—

१२७ जगरूपसिह
ठाकुर केशरीसिहजी देवलोक हुये पीछें उनकी ठकुराणी गौड धनसिहजी की वेटी गजकवर ने वीजोल्या से भक्तसिहजी के पुत्र जगरूपसिह को गोद लिया था—इस जगरूपसिह को गोडो नें वहा से निकाल दीया तो वै वीकानेर गया वहा उसको साधासर ग्राम पट्टे मिला

१२८ सुलतानसिहजी
यह रामसिहजी के पुत्र थे जगरूपसिहजी के गोद आये

१२६ जैतसिह सुलतानसिहोत
इनको गाव वणीसर—और भोजासर पट्टे हुवा—
इनके छोटे भाई रूपजी को गाव पीरेर पट्टे मिला

१३० केशरीसिहजी जैतसिहोत
इनके छोटे भाइयो के नाम
गूदडसिहजी—
दोलतसिहजी
केशरीसिहजी के पुत्र २

१३१ वडे सुमेरुसिहजी ये पाता-वतो के भाणेज थे—इनके सन्तति न हुई छोटे माधव-सिहजी थे—

१३२ माधवसिह-इन्होने करणी-सर के वीको की भाणजी अपनी वहण शिरदारकवर की विवाह वीकानेर के महाराजाधिराज सुरत-सिहजी से कीया—
माधवसिहजी के छ पुत्रो में से भीमसिहजी गद्दी वैठे-पुत्र १—चान्द कवर आम-झरा के राजा भक्तावर-

सिंहजी को परणाई
१३३. भौमसिंहजी
१३४. ठाकुर गुलाबसिंहजी भौम सिंहोत—
इनके पुत्र २ है—
वडा लक्ष्मणसिंहजी
छोटा हमीरसिंहजी
दोनूं कंवरपदे है—

अब पवारों के पट्टे मे बीकानेर के राज्य में ज्यो २ गांव है उनकी नामावली लिखते है—

ठाकुर भौमसिंहजी की कोटडी राणासर मे है जहां सं० १९०१ में उनने गढी वणवाई थी—

भौमसिंहजी के पट्टे के गांव—
१ गांव राणासर
१ गांव रातूसर
१ गांव कालासर
१ गांव भीवासर
१ गांव भगवानसर
१ गांव जेतासर
१ गांव मालकसर १
१ गांव जेतसीसर देवपाल का
१ गांव धनोर ढावर

भागसर की ढाव के दोय हिस्से तो भौमसिंहजी के पुत्र गुलाबसिंहजी के है—

और एक हिस्सा सिन्धु के खान का है—

ठाकुर भौमसिंहजी के छोटे भाई कानसिंहजी के पट्टे के गांवों की नामावली—
१ गांव राजासर मे कोटडी
१ गांव थेलाणूं
१ गांव पूंरावा वास—

ठाकुर कानसिंहजी के छोटे भाई शिवदानसिंहजी

उनके कानसिंहजी का बेटा तखतसिंह गोद आये जिने पट्टे के गांवों के नाम—
१ गांव सोनपालसर में कोटडी
१ गांव विजयराजसर

कानसिंहजी के पुत्र ४ थे
१ तखतसिंहजी
१ शालमजी
१ जवांहरजी
१ दूलजी

ठाकुर चांदसिंहजी माधवसिंहोत उनके पट्टे के गांवों के नाम
कोटडी जैतसीसर
१ गांव जैतसीसर
१ गांव मूड्यो
१ गांव अमरसर

१ गाव पीरोर
१ गाव साढासर
१ गाव वोलाड
ठाकुर चादसिहजी से छोटा भाई थभजी उनके पट्टे का गाव—
१ दुलचासर
चादसिहजी से छोटा भाई सूरजमलजी उनके पट्टे के गावो के नाम
१ गाव मावलसर
१ गाव वतडो—

नाथूसिहजी इन्द्रसिहोत के पट्टे मे पहली गाव पीरोर था—अव गाव करणसर है—

ठाकुर गूदडसिहजी जैतसिहोत का परिवार—

१ सरदारसिहजी गूदडसिहोत—

१ ज्ञानसिहजी गूदडसिहोन

१ चैनसिहजी गूदडसिहोत
ठाकुर सरदारसिहजी के पुत्र ४ हुये

१ खुमाणसिहजी— १ खङ्गजी मेघाणे के वाधावता का भाणेज
दूसरा व्याव गाव भोगराणी वाघावतो के कीया—
उनके पेट के १ शिवसिहजी तत्पुत्र मतावजी
सरदारसिहजी नें तीसरा वीवाह वीका किसनसिहोत के कीया—उनका भाणेज विभूतसिह सरदारसिहोत—चैनसिह गूदडसिहोत के गोद वैठे—
श्री वीकानेर की तरफ से पवार गूदडसिहोतो के पटटे के गावो के नाम—

१ गाव एक नारसरो—अजीतसिहजी के है—
अजीतसिह खुमाणसिहोत—खुमाणसिह सरदारसिहोत—सरदारसिह गूदडसिहोत—

खंगजी सरदारसिंहोत के बेटे रणजीतजी के पट्टे में
१ गांव एक कीकासर है—

ज्ञानसिहजी के बेटे हरिसिहजी के पट्टे के गांव—
गांव एक आदो शिवरासर—आदो वभूतसिंह चैतसिंहोत के है—

अथ गांव करणसर के ठाकुरों की पीडियों के नाम—

१ सुलतानसिहजी १ रूपसिहजी २ इन्द्रसिंहजी १ नाथूसिंहजी जिनके पुत्र ४
५ भूझारसिहजी इनके पुत्र ६ अजीतसिहजी ५ गुलावसिंहजी ५ ५ पदमजी ५ कुंभकरणजी—

अथ पंवारों की ३५ शाखा हुई, जिनके नाम—

१ कावा २ कूकडा २ विराणा ४ हरीया ५ हूवड
६ नीवेडचा ७ वोडाणा ८ मुरवेल ९ दांयमां १० दूगसा
११ वाघोत १२ सिंदायच १३ मोढसी १४ खीर १५ ऊमट
१६ घांघू १७ भायल १८ गूंगा १९ सोढा २० सांखला
२१ जागा २२ जैपाला २३ सीयोर २४ दुगोढिया २५ पायल
२६ डोड २७ वोरड २८ पवार २९ धूरिया ३० छाहड
३१ पीथा ३२ कूंकणा ३३ मोरी ३४ गेला ३५ किंगवा—

साख चवाणों की—

१ डेडरिया २ देवडा ३ हाडा ४ खींची ५ वालीसा
६ सोनगरा ७ मोयल ८ टांक ९ निर्वाण १० मुरेचा
११ मादडेचा १२ वाघोड १३ कामखानी १४ वगरेचा
१५ चीता १६ चीवा १७ भरव १८ खेरव १९ पावेचा
२० मुरवेल २१ मुरेचा २२ सीपटा २३ चित्रावा २४ चंडालिया

शाखा पडियारों की—

१ पडियार २ मलसिया ३ इन्दा ४ कालया ५ वूलणा
६ लूलोरा ७ वोरी ८ रामठा ९ वोथा १० घाधिया
११ खखर १२ सिन्धक १३ चोयल १४ फलू १५ चेनिया
१६ वोजरा १७ वाफणा १८ चोपडा १९ पेमवाल २० गोठचा
२१ टाक २२ टाकसिया २३ चादोरा २४ माफ २५ खूमोर
२६ सोमोरा २७ जेठवा—

शाखा शोलकियों की—

१ शोलकी २ बाघेला ३ खालच ४ खेराड ५ चीरपुरा
६ वामगा ७ वाला ८ रणधीर ९ चूडावत १० वहेला
११ भुटा १२ सोजतिया १३ डालिया १४ ढाई १५ चालूका

## सोरठा

प्रथिवी वडा पवार प्रथिवी पवारा तणी ।
एक उजीणी धार दूजो आबू बैसणो ॥ १ ॥

(पत्र ७, प्रति भाडारकर ओरियटल रिसर्च इस्टीट्यूट,
न० १५००, १८९१–१८९५)

---

अन्य एक प्रति से—

॥ अथ साख पवारा री विगत लिख्यतै ॥

| | | | |
|---|---|---|---|
| १ पवारा | १० छाहड | १९ घुरीया | २८ जागा |
| २ सोढो | ११ मोटसि | २० भायी | २९ ठुठा |
| ३ साखलो | १२ हूवड | २१ कछोटीया | ३० गुगा |
| ४ भाभा | १३ सालोरा | २२ काला | ३१ गलडा |
| ५ भायल | १४ जैपाल | २३ कुकडा | ३२ कीलोलीया |
| ६ दुपेम | १५ क्रगवा | २४ खैर | ३३ कुकुण |
| ७ पाणीसवल | १६ कावा | २५ पुट | ३४ पीथी |
| ८ वहीर्य | १७ उमट | २६ टल | ३५ डोड |
| ९ वालह | १८ घघु | २७ टेखल | ३६ वोरड |

पवारां री साख रो कवत—छपै—

कावानै कुकडा, वेहद विदु विरांणां ।
हरीया हुवड, नीव, वोडी नेचा वोडांणां ॥ १ ॥
गुजर अहडा सैंड, मोरी मुरखेल मुणंजै ।
दाहमा दुगसा वाघा गज भांण भणंजै ॥
सडाइच और चुडेसमा, प्रथवी सुजस प्रमांणीया ।
मेरसा खीर उमट-महट, वंस पमार वखांणीया ॥ २ ॥

कवत दूजो—

धुर वह जे धांधवे, वरण वहले भायले ।
पैसेरा पागले जात वहले स पहले ॥
इणीयार वम देव, सोढ साखलां भिघालां ।
गुंगा अर गलडा, जरड़ जागा जैपालां ॥
सीघोर दान दुगोठीयां, पायल डंड पमार हर ।
एतली साख उद्योत गिर, वंधे राव चाहड समर ॥ १ ॥

वंशावली पमारां री

| | | |
|---|---|---|
| आवुसथांन | ५ राजा पल | १७ चित्रांगद |
| अनल कुंड नीकास | ६ रा० परूराय | १८ गद्रपसेन |
| पंच प्रवराय | ७ धुंधमार | १९ वीर विक्रमा |
| वत्स्य गोत्राय | ८ धरणी वारा | २० विक्रम चरित्र |
| मारधंधनी सा० | ९ धारगिर | २१ रांणो अजै भुपाल |
| सचइ कुलदेवी | १० धाहड़जी | |
| ाद जुगाद | ११ धीरसेन | २२ महिपाल |
| कवल | १२ पोहपसेन | २३ मधुपाल |
| : व्रमाजी | १३ लखसेन | २४ चेदजी |
| २ मारीच | १४ बुधसेन | २५ गोसाल |
| ३ कासप | १५ कालसेन | २६ संघल सेन |
| ४ धुम रिख | १६ बुधसेन | २७ भोजराज |

| | | |
|---|---|---|
| २८ उदैकरन | ४२ पातल सघ | ५७ रायसलजी |
| २९ देवकरन | ४३ राणो गुणराज | ५८ झुझारसघ का भाइ |
| ३० राजा सत्य | ४४ लाखण | वखतसघ |
| ३१ राजा सीव | ४५ जसपाल | ५९ ठाकर जगतरुपसघ |
| ३२ सालवाहन | ४६ रावत लखणसी | ६० सुरताणसघ |
| ३३ राजा हम | ४७ रावत कैंदोजी | ६१ ठाकर जैतसगजी |
| ३४ हरवस | ४८ गवत साघण | ६२ ठाकर केसरीसगजी |
| ३५ राजासघ | ४९ रावत हमीरजी | ६३ ठाकर माधोसघजी |
| ३६ राजा मघ | ५० रावत सवाइमैपो | ठाकर चान्दसघजी |
| ३७ | ५१ राघवदासजी | थेभजी |
| ३८ वुधाइच | ५२ करमचदजी | सूरजमलजी |
| ३९ वाघजी | ५३ पचायणजी | भोमजी |
| ४० उदै आदीत | ५४ मालदेजी | कानजी |
| ४१ जगदेव | ५६ सादुलजी | सीवदान |
| | | चांदजी के सालै |
| | | कर दीपसगजी |

( प्रति श्री सादूल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट, बीकानेर )

# परिशिष्ट १

## वीकानेर राज्य के ठिकाने

## खांप पंवार

*ठि० जैतसीसर*—पटै गांव १० चाकरी असवार १२ फो० रे० रु० २४००) माफ।

*ठि० जैतसीसर*—महाराज श्री सूरतसिंघजी रा राज में........ माधोसिंघ केसरीसिंघोत नूं, श्रीजी रा साला छा ज्यानूं ताजीम इनाइत हुवो।

*ठिकाणो जैतसीसर*—महाराज श्री जोरावरसिंघजी रा राज में। ठा० जैतसिंघजी नै।

सिंघ पुवार किसनसिंघजी उत्तमसिंघजी २ दीपजी ३ चांद-सिंघजी ५ मोघोसिंघजी ६ केसरीसिंघजी ७ जैतसिंघजी ८ सुलतांनसिंघजी ६। रेख रा रुपिया तो माफ। रुखाली धुवो। कोरड रा रुपया लागै ५५०)।

*ठि० राणासर*—पटै गांव ५ चाकरी असवार १२ फो० रेख रा रु० २०२१) माफ।

*ठि० राणासर*—महाराज श्री रतनसिंघजी रा राज नै सं० १८८८। ठा० भोमसिंघजी श्रीजी रा मामा रै वेटा भाइ छा तिणसूं ठि० ताजीम इनायत कीवी।

सिंघ गुलाबसिंघजी १ भोमसिंघजी २ माधोसिंघजी ३ केसरी सिंघजी ४ जैतसीसर मे मिले।

राणासर मे कोटडी या गडी स० १६०१ घाती।

रेखरा रुपीया माफ। रुखाली धुनो। कोरड रा रुपीया लागै।

*ठि० नारसर*—पटै गाव ६ चाकरी असवार ६ फो० रेख रा रु० १२००) माफ।

*ठि० नारसर*—श्रीजी महाराज श्री सुरतसिंघजी रा राज मै स० १८५१ ठाकर सिरदारसिंघजी गुदडसिंघोत नू इनायत कीयो। ताजीम इनायत हुई स० १६०८ रेख रा रुपीया माफ। रुखाली धुनो। कोरड रा रुपीया लागै।

सिंघ अजीतसिंघजी १ खुमाणसिंघ २ सिरदारसिंघ ३ गुदडीसिंघजी ४ जैतसर मे मिले।

*ठि० सोनपालसर*—पटै गाव ३ चाकरी असवार ३ फौज मै रेख रु० ६००) माफ ठिकाणो महाराज श्री रतनसिंघजी रा राज मे ठाकरा सिवदानसिंघजी [1] नै ठि० इनायत हुवो स० १८६४।

सिंघ भिंडदसिंघ १ तखतसिंघ २ सिननसिंघ ३ मावोसिंघ रुखाली धुनो। कोरड रा रु० २५०) लागै।

*ठि० राजासर*—पटै गाव ३ चाकरी असवार ३ फौज मै रेख रा रु० ६००) माफ।

---

१ इनके वशावलि के १० कवित्त प्रति न १४१ में लिखे हैं जिनका पाठ भेद परमार वश दपण की टिप्पणी म दिया जा चुका है।

(६) परमार राजा मुंज मंत्रियां वरजतां गोदावरी उलांघि करणाटक रा राजा तेलपदेव माथे गयो। जंग में तेलपदेव इण नुं पकड़ लियो। भाखसी में दियो। कितांईक वरसां वहन म्रणालवती रा कह्यासुं आपरा सहर में घर-वर भीख मंगाय मुंज नुं सूळी दियो।

(७) रिख कपाट जड़ि गुफा में वेठो हुतो। राजा जाय कह्यो किंवाड़ खोलो। जद रिखि कह्यो—कुण है? राजा कह्यो—हूं राजा छूं। जद रिखि कह्यो—राजा तो इंद्र है। जद भोज कह्यो—किंवाड़ खोलो, हूँ दाता छूं। जद रिखि कह्यो—दाता तो करण हुवो। भोज कह्यो—किंवाड़ खोलो, हूँ क्षत्रिय छूं। जद रिखि कह्यो—क्षत्रिय तो अर्जुन हुवो। जद भोज कह्यो—खोलो किंवाड़। रिख कह्यो—कुण छै? भोज कह्यो मिनख छूं जद रिखि कह्यो—मिनख तो धारापति। भोज है। तो हाथ लागा विना खोलियां किंवाड़ खुल जासी। यूं हीज हुवो।

(८) सालवी नूं धारा रै कोटवाल कहायो—अमुको कवि भोजराज पास आयो सो पावस में थारै घरे उण कवि रो डेरो हुसी। तूं कवि नहीं जिण सूं थारो घर कविनूं दिरीजै। सालवी राजा कनै जाय काव्य सुणाया—

कवयासि वयामि यासि च

(९) आबू रै धणी पाल्हण परमार सरब धातू मांहे भरत रो भरियो थीतंकर रो वीख हुतो सू मलाय अचळेसर है। नांदियो भरायो जिण विख वालण रा पाप सूं पाल्हण रै कोढ उवड़ियो जीददेव रो नांवो लिख भराय थापित कियो जद कोढ मिटियो।

(१०) राव जगमलरो बेटो मेहाजळ जिण रा बेटा री विगत—रायमल १, पचायण २, जैतमाल ३, कान्ह ४, करण ५, परवतसिंघ ६, परवतसिंघ रो सूजो ७, सूजा रो लूणो ८, धीगाणें रहे।

(११) रायमलरो बेटो केसौदास राणाजीरै चाकर।

(१२) पचायणरो लिखमण जाळोर रहै।

(१३) कन्हरै केसरीसिंघ।

(१४) परमार मालदेरो सादूल जिण सादूल रै बेटो रायमलरा बेटा री विगत,—जुमारसिंघ १, गजसिंघ २, अजनसिंघ ३, वखतसिंघ ४, आणदसिंघ ५, केसरीसिंघ ६।

(१५) परमार आणदसिंघ नू राठोड गिरधरसिंघ करमसिंघोत मारियो राणाजी री धरती मे।

(१६) परमार सत्रसाल सादूलरो।

(१७) परमार फलो मालदेओत जिणरा बेटा री विगत—रामचद १, भवनीदास २, गोइददास ३, किसनदास ४, भगवानदास ५, बीठलदास ६, सामराम ७।

(१८) मालदेरै वडो बेटो फलो।

(१६) भानीदास फलावतरा बेटारी विगत—नारायणदास १, नरयद २, अखैसिंघ ३, मेवाड माहे छै, सूरसिंघ घोड़ारो चाकर देईदास जगरूप मेवाड़ माहे छै।

(२०) परमार आसकरण मालदेरो अकज गयो।

(२१) परमार सुजाणसिंघ मालदेरो। काम आयो कछवाहा मान सूं वेढ हुई जठे।

(२२) परमार रावत जेसो पंचायण रो जिण रै ठाकुराई जैतरै हुती। पुत्र किणरै ई हुवो नहीं।

(२३) परमार रावत उदैसिंघ पंचायणोत जेसा पछै पाट पायो संवत १६५२ रा सावण सुद १।

(२४) रणथंभोर चहुवाण हमीरदेव साको कियो।

(२५) परमारांरी ख्यात—रावत सांगो १, उणरो रावत महपो २, उणरो रावत रावो ३, उणरो रावत करमचंद ४, उणरो पंचायण ५, राजा कछवाहा मानरो नानो।

(२६) संवत १५८६ विक्रमादीतजीसूं चितोड़ पलटियो जद जेठ सुदी २ पंचायण काम आयो।

(२७) पंचायण रो रावत मालदे पातसाह सूं छाड राणा उदैसिंघ रै वसियो, जाजपुर राणाजी पटै दियो।

(२८) सादूळ माळदेरो। सांगो ही माळदेरो जिण री वेटी सूरजसिंघजी अराई जाय परणिया। इणरी दोहती आसकंवर बाई।

(२६) परमार सादूळ मालदेरो जिण श्रीनगर वसायो। पातसाह जंहागीर अजमेर रो सोबो इणनूं दियो। सीसोदियो भीम अमरसिंघोतरा कहणासूं साहजादा खुरमरी आण में बापरा अजमेर उमराव सरव झपान में वैसै। वांसरी करड़ी झपान कहावै। च्यार जणा उपाड़ै।

(३०) परमार राजा कलसाह धारा नगरी सू उठ कमाऊ रो राजा लखमीचद जिणरी चाकरी मे रह्यो। लिखमीचद लोहवोगढ इणन पटै दियो। पछै कलासाह वेफरमानरदार होय कमाऊ री आधी धरती दवायी, लोहरोगढ अपणायो। गढ वार कहीजै।

(३१) कलसाहरा वस मे महीपतसाह हुवो जिणरी राणी चहुनाण करणावती। जिण पातसाहारा उमराव नीजानतखा पहाडा माथै आयो, तुरकारा नाक काटिया जिण सू नकटी राणी कहाणी। करणावती महीपतसाह मर गयो हो, वेटो छोटो हो, जद करणावती फतैसिंघ ।

(३२) कलासाह सू चोथी पीढी सहजसाह हुवो जिण श्रीनगर वसायो।

(३३) कमाऊरो राजा गुसाई कहावै।

(३४) परमार राजा दूलहराव उजीणसू उठ भोजपुर पटणा उरै कोस पचीस।

## साखला

(३५) परमार चाहडराव रै घरवासै अपछरा हुती जिणसू वेटा दोय इणरै हुवा सो दोने वाघरा सख वजायो। जिणसू वाघ रे नसरा साखला कहाणा।

(३६) परमार चाहडदेरा वेटा दोय—अेक सोढो, दूजो साखलो। वेकी माय दे मगत हुई।

(३७) तीजी वेटी देवी कल्याणकुवर अपछरासू हुई।

(३८) रासीसर सांखलो खीमसी रायसलरो बेटो रहै। दहिया जांगळू राज करै। दहियांरो ब्रामण गूजरगोड केसो है जिण दहियां नै कह्यो—थे कहो तो हूँ जांगळू अमकै ठिकाणै तळाई खिणाऊं। दहियां कह्यो—अमको ठिकाणो तो घोड़ा दौड़ावारो सराड़ो है, अठै तळाई मत खिणाव, जद खीमसी सांखलासूं केसो मिलियो। खीमसी कनै सूं दहिया मराय जांगळू खीमसी रो अमल करायो। पछै केसो दोयड़ पसाव दिया। पोळपात थापियो। इणरी बेटी ऊमा गढ गागुरण खीची अचळदास नूं परणांई।

(३९) खीमसी रो कंवरसी, कंवरसीरो जैसो, जैसारो मूंजो, मूंजारो ऊदो, ऊदासूं सांखला पतळा पड़िया।

## ॥ सोढा ॥

(४०) परमार धरापसावरो बेटो आसराव जिणरै वंसरा सोढा पारकरा। दूजो बेटो धरापसावरो दूजणसल जिणरै वंसरा सोढा धाटेचा।

(४१) पारकरा सोढा ज्यांरै प्रोळपात मिहड़ू।

(४२) सुवेरा में पुरलांरै गांव ७०० है। धणी परमार राणो पदवी राणा रतनसिंघ नूं वागड़ियै चहुवाण उदेसिंघ मारियो। गंभीरसिवरा वेर में। परमार मदनसिंघ नूं राणो कियो।

(४३) पारकर राणो चंदण गोइंदरावरो वाघेलांरो भाणेज।

(४४) दूहो—पड़े छवाहड़ पांचसौ, सोढा वीसा सात।
एकण तीतर वासतै, इए राखी अखियात॥

(४५) छगाहडानू मार पारकरा सोढा मूळी लीघी ।

(४६) मूळी रै धणी रतन सोढँ उवा साथ लिया विचै परवत मीसणनै दीनो । पचास लाख नगद, पचास लाख भरणो ।

(४७) ऊमरकोटरा सोढा पटवी राणा ज्यारी परियावळी—राणो गागो चापारो, पातो गागारो, चद्रसेण पातारो, महाराजा सूरजसिंघजी राणा चद्रसेणरै परणिया हुता, भोजराज चद्रसेणरो, ईसरदास भोजराजरो सवत १७१० रा भादवा में भाटी रावळ सबळसिघ ईसरदासने अमरकोट माहेसू काढियो, सोढा जैसिंघदेनै ऊमरकोट राणो कियो ।

(४८) गागो १, मानसिंघ २, जोधो ३, जैतसिंघदे ४, राणा गागारो पडपोतो जैसिंघदे ।

(४९) सोढो रतनसी राणा गागा री जिणरी वेटी भाटी रावळ मनोहरदास परणियो ।

(५०) सोढो करण राणा चापारो तिणरो खींवो, खींवारो भाणो, भाणारो मनोहरदास—पातसाही चाकर, अमरकोट परसोरण जठै रहै ।

(५१) गोडै चापारै गळै सोढा तणी सरम ।

(५२) अमरकोट सोढा सुरताण ज्यारो ठिकाणो छाछरो १, फागलियो २ ।

(५३) सोढा भोजराज ज्यारा ठिकाणा तीन-छोळ १, सुहडा २, ठिगारी ३ श्री ।

(५४) सोढा गांगदास ज्यांरा ठिकाणा च्यार—राडरातो कोट्ट १ खीपरो मुथूण २, अवरसिया ३।

(५५) सोढारां ठिकाणा पांच—सुरताण उच्चुल वार सोढा राम ज्यांरा छै।

(५६) एक दिन घोड़ा सातवीस अूमरकोट राणै खीमरा चोपड़ा मह्यानूं दिया विणसूं रीजी।

(५७) वीरवावरा सोढां री पीढी—कांधल १, कांधलरो राम २, राम रो मनहर ३, मनहररो नोतो ४, नोतारो संतो ५, संतारो वीजो ६, वीजारो मोडो ७, मोडारो पंजो ८—ओ हमै वीरवावरो सिरदार है।

(५८) मनहररो पांचो, पांचारो अजो, अजारो जेहो जिण सताजी कनांसूं गोडी जी लिया, विरावात्र लिवी।

(५९) पछै मोडाजी सताजी रै पोतै जेहाजी नूं जेहाजी रा वेटा दुरगजी हाथीजी नूं मारियो वीरावात्र। गोडिया रस माथनूं लिया जगतसिंघ चहुवाणनूं मदद आने।

(६०) पछै सोढो तेजमालजी हारो। भतीज सहेत यह राणै सोढा वाकीजीरै सरणै गयो वीरवावसूं निसरनै।

(६१) गोड़ीजी इष्ट सोढांरै जिणसूं वीरवाव कोट में मद-मांस वापरै नहीं। जेहा सोढा रो वेटो हाथी गुडै सूरजमल राणारी वेटी परणियो हो। एक दिन सूरजमलरी वेटी वोली मोनूं म्हारै वाप वाणियानूं परणायी। उण दिन सूं हाथी

म३-मास छापै आपरै महल मे वपरायो। जेहाजी माथै गोडीजी कोपिया नै मोडजी खानपुर हुता उठैसू पत्र दियो । पछै जेहाजी नू मार मोडजी वीरवाड़ लियो।

## भायला पवार

(६२) भायल पदमसी रो सजन वडो रजपूत हुवो । सींधल चापारी वहू देवडी इणारा घर माहे पैठी। पछै किताहीक वरसा माहोमाह लड चापारे हाथ सजन रह्यो, सजनरै हाथ चापो रह्यो। देवडी सती हुई। हाथ वाढ नै चापारै घडमे नाखियो नै वळी सजनरै साथै।

(६३) सिवाणो मजनरा गिर छै। मजनरै रावळ, चहुवाण सिवाणारो राव सातल जिणरो दोहितो । इण अलाउद्दीन सू मिल सिवाणो भिळायो । पातसाह सिवाणो इणनू दियो। पछै रावळनू पातसाह मरायो।

( श्री नरोत्तमदास स्वामी सपादित एव राजस्थान पुरातत्वान्वेपण मदिर से प्रकाशित 'बाकीदास री ख्यात' पृष्ठ १३६-१४१ से उद्धृत )

---

# परिशिष्ट १

## मालवे के परमारों की

## उदयपुर-प्रशस्ति

॥ ॐ नमः शिवाय ॥

गंगांवुसंसिक्तभुजंगमाल-
वालेकलेन्दोरमलांकुरात्मा ।
यन्मूर्द्ध्नि नम्रे हितकल्पवल्ल्या
भातीव भूत्यै स तवास्तु शंभुः ॥[१॥]
सानदनंदिकरसुंदरसांद्रनंदी-
नादेनतुंवुरुमनोरमगानमानैः ।
नृत्यंत्य[1]वस्यमनिशं सुरवासवेस्या[2]
यस्याग्रतो भवतु वः स शिवः शिवाय ॥[२॥]
मूर्द्ध स्थिताभ्रसरितो क्षमयेव संभो[3]-
रर्धांगमंगघटनाद्-घनमाश्रयंती ।
दृष्ट्वात्मनाथवसतां[4] सकलांगतुष्टा
पुष्टिं नगेंद्रतनया भवतां विदध्यात् ॥[३॥]
गणेशो वः सुखायास्तु निशातः परशुः करे ।
यस्य नम्रघनाविघ्नकंदोच्छित्त्या इवोद्यतः ॥[४॥]

---

१. पढ़ो-अवश्य २. पढ़ो-वेश्या ३. पढ़ो-शंभो ४. पढ़ो-वशतां

अस्त्युर्व्वीध्र प्रतीच्या हिमगिरितनय सिद्ध[५]दपत्यसिद्धै
स्थान च ज्ञानभाजामभिमतफलदोऽखर्व्वितं सोऽर्बुदाख्य ।
विश्वामित्रो वसिष्ठाद्दहरत बलतो यत्र गा तत्प्रभावाज्-
जज्ञे वीरोऽग्निकुण्डाद्रिपुबलनिधन यश्चकारैक एव ॥[५॥]
मारयित्वा परान् धेनुमानिन्ये स ततो मुनि ।
उवाच परमारा [६]र्थिवेन्द्रो भविष्यसि ॥[६॥]

तदन्वयेऽखिलयज्ञमघ-
कृप्तामरोत्साहतकीर्तिरासीत् ।
उपेंद्रराजो द्विजवर्ग्गरत्न
[७]सौर्यार्जितोत्तुंगनृपत्व [मा] न ॥[७॥]

तत्सूनुरासीदरिराजकुंभि-
कठीरवो वीर्यवता वरिष्ठ ।
श्री वैरसिंहश्चतुरर्णवात-
धाम्या जयस्तंभकृतप्रशस्ति ॥[८॥]

तस्माद् बभूववसुधाधिपमौलिमाला-
रत्नप्रभारुचिररंजितपादपीठ ।
श्री सीयक करकृपाणजलोर्मिमग्न-
[८]मत्रुव्रजो निजयिना धुरि भूमिपाल ॥[९॥]

तस्मादवन्तितरुणीनयनारविंद-
भास्वानभूत् करकृपाणमरीचिदीप्र ।
श्रीवाक्पति [९]सतमन्यानुकृतिस्तुरगा
गंगासमुद्रसलिलानि पिबन्ति यस्य ॥[१०॥]

---

५ पत्नो-र्दापत्य ६ पत्नो-परमाराख्यं पार्थिवेंद्रो ७ पत्नो-र्शौर्या°
८ पत्नो-रातृ° ९ पत्नो-शतमन्या°।

जातस्तस्माद् वैरिसिंहोन्यनाम्ना
लोको ब्रूते [वज्रट] स्वामिनं यं ।
शत्रोर्वर्ग्गं धारयासेर्निहत्य
श्रीमद्धारा सूचितायेन राज्ञा ॥[११॥]

तस्मादभूदरिनरे[१०]स्वरसंघसेवा–
गर्ज्जदगजेंद्ररवसुंदरतूर्यनादः ।
श्री हर्षदेव इति खोट्टिगदेवलक्ष्मीं
जगाह यो युधि नगादसमप्रतापः ॥[१२॥]

पुत्रस्तस्य [११]विभूषिवाखिलधराभोगो गुणैकास्पदं
[१२]सौर्याक्रांतसमस्तसत्रु[१३]विभवाधिन्याद्यवित्तोदयः[१४]।
वक्तृत्वोच्चकवित्वतर्क्ककलनप्रज्ञातशा [स्त्रा] गमः
श्रीमद्वाक्पतिराजदेव इति यः सद्भिः सदा कीर्त्यते ॥[१३॥]

कर्णाटलाटकेरलचोलशिरोरत्नरागिपदकमलः
यश्च प्रणयिगणार्थितदाता कल्पद्रुमप्रख्यः ॥[१४॥]

युवराजं विजित्याजौ हत्वा तद्वाहिनीपतीन् ।
[१५]खड्गमूर्द्धीकृतंयेन त्रिपुर्या विजिगीषुणा ॥[१५॥]

तस्यानुजो धिर्ज्जितहूणराजः
श्रीसिंधुराजो विजयार्ज्जितश्रीः ।
श्रीभोजराजोजनि येन रत्नं
नरोत्तमाकंपकृदद्वितीयं ॥[१६॥]

---

१०. पढो–नरेश्वर ११. पढो–विभूपिता° १२. पढो–शौर्या°
१३-१४. पढो–शत्रुविभवाधिन्याध्यवित्तोदयः १५. पढ़ो–खड्गऊर्ध्वीकृतो ।

आकैलासान्मलयगिरितोऽस्तोदयाद्रिद्वयादा-
भुक्ता पृथ्वी पृथुनरपतेस्तुल्यरूपेण येन ।[१६]
उन्मूल्योर्व्वीभरगुरुणा लीलया चापयज्या
क्षिप्ता दिक्षु क्षितिरपि परा प्रीतिमापादिताच ॥[१७॥]
साधित-विहित दत्त ज्ञात तद्यन्नकेनचित् ।
किमन्यत् कविराजस्य श्रीभोजस्य प्रशस्यते ॥[१८॥]
चेदीश्वरेंद्ररथतोग्गलभीममुख्यान्-
कर्णाटलाटपतिगूर्ज्जरराट्तुरुष्कान् ।
यद्भृत्यमात्रविजितानवलोक्यमौला
दोष्णा बलानि कलयति न योद्धृलोकान् ॥[१६॥]
केदाररामेश्वरसोमनाथ-
[सु] डीरकालानलरुद्रसत्कैः ।
सुराश्र [यै] र्व्याप्य च य समन्ताद्-
यथार्थ सज्ञा जगती चकार ॥[२०॥]
तत्रादित्यप्रतापे गतवति सदनं स्वर्गिणाभर्गभक्ते
व्याप्ता धारेव धात्री रिपुतिमिरभरैर्म्मौललोकस्तदाभूत् ।
विस्रस्तांगो निहत्योद्भटरिपुतिमिरभरग्वङगर्व्वांसुजालै[१७]-
रन्यो भास्यानिवोद्यन्न्, विमुदितजना मोदयादित्यदेव ॥[२१॥]
येन धरणीवराह परमारेणोद्धृतो निरायासात् ।
तस्यैतद्ध मेरुद्धारी यत कियन्मात्र ॥[२२॥]
[क्षु धान्य-] तत्राजिमजक

१६ पद्मो-चापयज्या । १७ पद्मो-दशांसु° ॥

# परिशिष्ट २

## जगदेव पंवार की वात

राजा उदीयादीत पंवार धार नगरी राज्य करै। राजा रै दोइ रांणी नै गर्भ रह्यो। कितरे हेके दिने एकै रांणी रै पुत्र हूवो। राजा महल मांहि पौढ़ीयौ थौ; तिकै समईयै वधाईदार आयौ। आइ सिरांहणै ऊभो रह्यो; तिनरै बीजी राणी रै पुत्र हूवो; ऊवै रो वधाईदार पगांथीयां ऊभौ रह्यौ। जितरै राजा जागीयो; तितरै पगांतीयां वाले वधाई दीन्ही। ताहरां सिरांहतियां वाले कह्यो— "हूं पहली आयौ थो।" तद राजा कह्यौ—"जु जिकै पहली वधाई दी, तिको टीकायत; तेरो नांम रिणधवल। पछै वधाई दीन्ही, तेरो नांम जगदेव, रावत रो टीको।"

कितरा एक वर्ष हुआ। राजा उदयादीत वैकुंठ पधारीया। राजा रौ टीकौ रिणधवल नुं दीयौ, नै जगदेव उठी चालीयौ। जगदेव गुजरात गयौ। जाइनै सिद्ध राजा जैसिंघदे रै वास रह्यौ। राजा जगदेव रौ वड़ौ कारण कीयौ। घणौ आदर दे नै वास राखीयौ। घणौ रिजक दीयो। जगदेव दरबार जावै, सु राजा रौ मुजरो करै—दोनुं वखत। ताहरां प्रभाति रै मुजरै राजा रै जावै, ताहरां राजा नुं वेदल देखै; पण पूछै नहीं।

इयुं करतां एक दिन राजा शिकार चढ़ीयौ छै। जगदेव नै राजा एकान्त एकठा हुआ। ताहरां जगदेव राजा नै पूछीयौ—

"महाराजा ! राजि, सवार रै दरबार पधारौ, ताहरा बेंदल थका पधारौ सु किसै वासतै ?" ताहरा राजा कहै नहीं। ताहरा जगदेव हठ कीयौ । ताहरा राजा कह्यौ—"जगदेव बात मत पूछै।" जगदेव कहै—"वात कहो।" ताहरा राजा कह्यौ—"जु म्हारे महल मे कोई देवता आवै, प्रहर १ रहै, तितरै हू निसत हुइ रहा।"

ताहरा जगदेव कह्यौ—"परमेश्वर भली करिसी"

तद जगदेव राति चौकस रहै। तद एक दिन जगदेव राजा,रै बाग मैं जाइ बैठो। चहबचे रै ऊपर घोडा रा पग च्यार ऊभा दीठा। इसडा पैर घोडै अवर रा नहीं। तद माली नै तेडि पूछीयो—रे ! अठै कोई घोडो ही आवै छै।"

तद माली कह्यौ—' मनें ईयै वात री खबरि पडै नहीं।"

तद राति जगदेव उठै ही ज रह्यौ। राति आधी वितीत हुई, ताहरै एक असवार आकास सु उतरीयो। उवा पैरा ऊपर घोडो आइ ऊभौ रह्यौ। ताहरा जगदेव विचारियो—"महल मैं आवै सु ओही ज।" तद ऊनै री वासौ कीयौ। ओ महल माहै गयो। तद जगदेव एकै ओल्है ऊभौ रह्यौ। प्रहर एक महल माहै रह्यौ, पाछै घिरियो। तद जगदेव ऊनै सु बाथा हुवौ। घड़ी ४ खसीया। तद राति तूटन लागी। तद ओ बलहीन हुवौ। जगदेव ऊनै नु उपाड़ी नीचे दीयौ।

"हिवै राजा रै महल मैं नहीं आवु, तू मोनै छोडि। तोनु पिण, पत्थर सगरी देईस। घोड़ो नै खड़ग तोनू दीया।" वाचा

ले नै छाड़ियो। जगदेव घोड़ो खड़ग ले नै डेरै आयो। मन में खुस्याल हूवों।

राजा रै मुजरे गयो। राजा सु हकीकत कही। राजा खुस्याल हूवों जगदेव डेर आयो। राति राजा रै महल में मरद आवतो सु नायो। वीजै दिन राजा प्रोहित तेड़िनै कह्यो—"थे नालेर ले जावो। वाई जगदेव नु परणाविस्यां।" प्रोहित नालेर ले जाइनै, जगदेव नु वंदायो। जगदेव नालेर वांदि लीयो। साहो जोवाइ जगदेव नु परणायो। राजा घणा वांना कीया। चोथै हंसै री धरती जगदेव नु दीन्ही। आधी गादी जगदेव वैसै; आधी गादी राजा वैसे। इये भांत सु सुख सु राज करै छै।

एकदा प्रस्तावि राजा जेसिंघदे दरवार जोड़ि सभा सहित राजा दरवार वैठो छै। तिसै समईयै एक भाटिणी आई—उघाड़े माथै, छूटा केस; आइनै राजा नु डावै हाथ सु आसीस दीन्हीं। राजा विकराल रूप देखिनै अचरिज हूवो।

तिसै समईयै मै जगदेव पंवार दरवार आयो। आइनै राजा सु मुजरो कीयो। राजा घणो आदर देनै गादी वैसारियो। ताहरां जगदेव नु कंकाली देखि नै माथो ढांकीयो। जीवणै हाथ सु आसिका दीन्हीं। ताहरां राजा अचरिज हूवो; पूछीयो—"कंकाली! हिवारू माथो ढांकीयो सु कासु; इतरी ताल माथो उघाड़ो हुतो, नै हिवै माथै कपड़ो लियो।"

ताहरां कंकाली वोली—"महाराजा? इतरी ताल दरवार मांहे मरद कोई वैठो न हुतो, तै माथैं कपड़ो न लीयो। तो हिवै

दरवार माहै मरद आयो, दातार आयो, तै माथै कपडो लीयौ। आज ससार माहे जगदेव पमार नर छै, दातार छै।"

कवित्त—ककाली कनडी दिस दक्खिण हु चली।
गुजरातह जेसिंह आइ तत-खिणहज मिली ॥
उलधि कुली छतीस अथ साहण नहीं पारह।
अधक अनोपम राइ ताम फल वदत चारह ॥
सरग सपवा चकवै मगज मग्या मगमफर।
ककाल कहै जेसघ सुणि, मोहि समीपम त्रिरह पर ॥१॥
उत्तर दच्छिन पुव्व देस पच्छिम सपत्ती।
नर नरिंद भुव पत्त कित्त कारण जोवती ॥
जहा राइ जेसिंघ कुली छतीस अवंनी।
सिर कपड नह दीयौ नाम कर आसिका दिन्नी ॥
जव जगदेव पिख्यो नयण, सिर ढकव आसिक दीयो।
दाहिणौ हाथ पसाव दियो तब सु रान विखवाद कीयो ॥२॥
त्रिया चरित न लभइ, अरधन हरस रसइ।
कुण कारण सिर ढकीयो, इम पृछै परमइ ॥३॥
सव कोऊ ससमथ है, आपण पै आवास।
औ पाचे अहला गया, जमन हूवत तिण पास ॥४॥
सव कोऊ सममथ है, चित्त चोखै मुह मिट्ठ।
दान खग्ग जगदेव सम, खत्री अवर न दिट्ठ ॥५॥
मान हो राय मच्छर करा, जपै वयण असेस।
जो आपै जगदेव तुहि, सम चौगुण हू देस ॥६॥

तीन भुवण जस विसतरै, सरग मृत पाताल।
परमद संक ऐसो भयौ, सिर दीजै कंकाल ॥७॥

## कवित्त—स्त्री वाक्यं

आयौ गयवर गुडीय, अवल पटकूल विग्रह पर।
दीजै गाम कोटार, रयण सोलह कंचण भर॥
दीजै गऊ कुल महिप, थट्ट थाली वहु भंतीय।
पूत त्रिया दासी न दास वहु भांति निरंतर॥
दीजंत दान हैंमर चमर धनुप खाग ग्रह मंडणो।
जगदेव त्रिया इम उचरै, सीस न दीजै आपणो ॥८॥

## जगदेव वाक्यं

आंपू गयवर एक राय तौ पंच समप्पै।
पंच तुरी द्यू दान, राय पंचासक अप्पै॥
हीरा मांणिक लाल, देत मुहि मन्न न नंदै।
कड़ी मूंदड़ी दियं, राय वहु भाई समदै॥
दीजंत दान डमर चमर, धनुप खग्गा ग्रहि मंडणो।
जगदेव कहै सुन्दरि निसुणी, सीस न हुवै आपणो ॥९॥
जिन्ह जीवन कारणै, काल दुकालहि संची।
जिन्ह जीवन कारणै भोग भोयन रस भंची॥
जिन्ह जीवन कारणै भोग कीजंत महावर।
जिन्ह जीवन कारणै मिलै गुणवती सुन्दरि॥
जीव कै काज गढ़ संचीयै, धन जोवन कंचन कसी।
जगदेव जीव अति दोहिलौ मम आपिस हडहड हसी ॥१०॥

## द्विती (य) स्त्री वाक्यं

तू पवार कुल मरदु, तू म वासा भजण समदल ।
अप्पै तू मग्गयौ मैज दीन्हौ तुझ बल ॥
ककाली वीनतै सीस अप्यो मुगट मण ।
सुणौ राव जेसिंघ करै, कद लज अप्प मन ॥
अदबुद आया तन अगरै वैण अनोपम चित्तधर ।
जगदेव ककाली उचरे, सीस दीयतो निलव न कर ॥११॥

षड़ा काट सिर दियौ, तास तै अमृत वुठौ ।
अधर वग्ग आहन्यौ सभा सब कनहज दिठौं ॥
अपन कर कंपियो कित्त कारण तैं दिन्हो ।
सुणै वोहत दातार, इसौ दत किणही न किन्नो ॥
पमार भोज विक्रम पछौ भ्रम जास नाहीं कर चसै ।
अजदिज एह जगदेव कौं वड जिण सिर हडहड हसै ॥१२॥

सभासीस सचयौं, हाक गनय उचरीयौ ।
पिख राड गयौ भाजि, भाज मंदिर उतरीयौ ॥
तनही काल कराल बोल बोलै तिण वारह ।
वैण कह्यौ चोगुणौ देह दिन्नो जप नारह ॥
जेसिंह कहै कराल सुणि, मोहिन्छाडि लै लखमों ।
पिरयो ज सीस जगदेव को, भाग राव जेसिंह गो ॥१३॥

तब न भान उगरै तब न फण पतधर झलै ।
अरजन महै न बाण करन, पारथ्योज चलै ॥

ब्रह्मा छंडै वेद इंद्र किम रहै झरंतौ ।
ईस कृपण तद भयौ पवन जग रहै वहंतौ ॥
कंकाली अहि निसि वीनवै, सर समेर जाको हीयो ।
पमार नकारो न करै सीस दान जगदे दीयो ॥१४॥

## ॥ कुंडलीयो ॥

सिर दिन्है धर आसना, देख्यौ सखी अपूव ।
जंघ मझि पड़िहारली छंड्यो नरवै अव ॥
छंड्यौ नरवै अव इह पर नारि सहोवर ।
जिण जित्यौ चालक्क सिद्ध जेसिंह समो नर ॥
सुजस रह्यौ संसार मैं, सच्च दिन्हौ कैलासणो ।
इण जगदेव पंमार सीस, दिन्हो धड़ आसणो ॥१५॥

## ॥ गाथा ॥

जगदेवो जगदाता, जगदेवो जगत गुरु ।
जगदेवो जगद्भ्राता, जगदेवो जगन्प्रिय ॥१६॥

## कवित्त

कर व कोप कंकाल आयस मही वयठी ।
तजवि अंन जल सहित, देव देवाल पयठी ॥
कहि लंघन दस पंच जिह खंडि नमन करीयो ।
पान पिख्य हरि सिद्ध सत्त पंमार न टरीयो ॥
यो बोल कूड कंदल मकर कंकाली विनव कह्यौ ।
जगदेव जीयो प्रनाम कर, पुहवि प्रताप जग जस रह्यौ ॥१७॥

ताहरा कंकाली जगदेव रै सिर ऊपरि धड़ रै मेल्हीयौ। जगदेव उठि ऊभो हुवौ, कंकाली आसीस दीन्ही । आसीस देनै कंकाली उडि गई, लोक देखता रह्या। जगदेव संसार माहे अखी हुवौ ॥ (अभय जैन ग्रंथालय की प्रति से)

["राजस्थानी वाता" मे प्रकाशित जगदेव पवार की वात मे पद्य न ८, ९, १४ कुछ पाठभेद के साथ हैं। २-४ अन्य भी हैं जो इसमें नही हैं।]

# परिशिष्ट ३

# परमारों की उत्पत्ति

१. परमारों की उत्पत्ति की कथाओं में एक विशेषता है। प्राय: सभी ने उन्हें अग्निवंशी माना है और प्राय: सभी ने वसिष्ठ ऋषि के अग्निकुण्ड को उनके जन्मस्थल के रूप में निर्दिष्ट किया है। महाराजाधिराज भोज परमार के पिता, श्री सिन्धुराज 'नवसाहसाङ्क' के दरबारी कवि पद्मगुप्त ने इस विषय का अच्छा वर्णन किया है। उसने लिखा है—"ब्रह्माण्ड के मण्डप के स्तम्भ के समान श्रीयुक्त अर्बुद पर्वत है।·······उस स्थान पर नीवार, मूल, ईंधन, कुशा ये सब यथेच्छ मिल सकते हैं। वहां इक्ष्वाकुओं के पुरोहित (वसिष्ठ) ने तप किया। जिस प्रकार कार्त्तवीर्य ने जमदग्नि की कामधेनु का हरण किया था, उसी प्रकार विश्वामित्र ने एक बार वसिष्ठ की धेनु का हरण किया। बड़े-बड़े आंसुओं की धारा से जिसका वल्कल भीग गया था, उस अरुन्धती ने अपने पति की अमर्ष रूपी अग्नि के लिये ईंधन का काम किया। विकट ज्वालाओं के कारण जटिल अग्नि में अथर्व विद्या को जानने वालों में अग्रणी (वसिष्ठ) ने समन्त्र आहुति दी। उसी क्षण स्वर्ण के कवच से आवृत धनुष, किरीट और सोने के अङ्गदों से युक्त एक पुरुष अग्नि से निकला। जिस प्रकार सूर्य अंधकार द्वारा हरण की हुई दिन-श्री को

लाता है, उसी प्रकार वह विश्वामित्र द्वारा हृत मुनि की गाय को दूर से ले आया, और उसने मुनि से सार्थक 'परमार' नाम प्राप्त किया[1]।

२ परमारों की उत्पत्ति का यह सब से प्राचीन स्पष्ट उल्लेख है। वसन्तगढ, उदयपुर, नागपुर, अथूणा, हाथल, देलवाडा, पाटनारायण, अचलेश्वर आदि के शिलालेखों में संक्षेप या विस्तार से यही कथा वर्तमान है। अकबरनामा एवं आइने-अकबरी आदि के प्रख्यात लेखक अबुल फजल ने भी परमारों को अग्निवंशी माना है। उसके कथनानुसार इलाही सम्वत् से दो हजार तीन सौ पचास वर्ष पूर्व अर्थात् वि० सं० ८१८ में महाबाहु नाम के किसी ऋषि ने अग्नि मन्दिर में सर्व प्रथम अग्नि होम आरम्भ किया। बौद्धों ने इस कार्य से असन्तुष्ट होकर राजा द्वारा अग्निहोम बंद करवा दिया। जनता अपने उद्धार के लिये भगवान् से प्रार्थना करने लगी। इससे प्रसन्न होकर भगवान ने अग्नि मन्दिर से एक मानव योद्धा को उत्पन्न किया, जिसने शीघ्र ही तमाम विघ्नों को दूर कर अग्नि पूजा की फिर स्थापना की[2]।

३ पृथ्वीराज रासो के अनेक रूपान्तरों में भी प्रायः यही कथा उपस्थित है। रासो के नागरी प्रचारिणी वाले बृहद् रूप की कथा का कुछ अंश आइने अकबरी से और कुछ प्राचीन शिलालेखों

---

१ नवसाहसाङ्क चरित, सर्ग ११, श्लोक ४६–७१

२ दूसरी जिल्द पृ २१४–५ (जरेट का अंग्रेजी अनुवाद)

से मेल खाता है। इस नवीन रूपवाली कथा की उत्पत्ति पन्द्रहवीं या सोलहवीं शताब्दी से पूर्व नहीं रखी जा सकती[3]। कथा अति संक्षिप्त रूप में निम्नलिखित है :—

विश्वामित्र, अगस्त्य, वसिष्ठ आदि अनेक ऋषियों ने आबू पर्वत पर यज्ञ आरम्भ किया। इससे क्रुद्ध होकर यज्ञद्रोही दैत्यों ने विण्मूत्रादि की वर्षा कर उसे दूषित किया। इस विघ्न को दूर करने के लिये वसिष्ठ ने अग्निकुण्ड से पडिहार, परमार, सोलंकी और चौहान—इन चार योद्धाओं को उत्पन्न किया। इनमें से तीन प्रथम यज्ञ की रक्षा में सफल न हुए।

४. जैसा ऊपर निर्दिष्ट हो चुका है, परमारों की उत्पत्ति की इन सब कथाओं में दो बाते प्रायः सर्वत्र वर्तमान हैं। चाहे 'परमार' की उत्पत्ति का कारण विश्वामित्र की अनीति रही हो, या दैत्यों और बौद्धों की, वे अग्निकुण्ड से उत्पन्न हुए और उनके उत्पादक ऋषि वसिष्ठ थे[4]। चौहानों, प्रतिहारों और सोलंकियों की उत्पत्ति की कथाओं मे यह सामंजस्य नही मिलता। शिलालेख एक बात कहते हैं तो बड़वे, भाट और चारण कुछ और ही। एक प्रमाण से हम प्रतिहारों को रघुवशी तो दूसरे से उन्हें अग्निवंशी सिद्ध कर सकते हैं। किन्तु परमारों के विषय में कम

---

३. पाटनारायण के सं. १३४४ के शिलालेख तक कथा का रूप प्रायः वही था जो नवसाहसाङ्कचरित मे वर्तमान है। यज्ञ का आरम्भ और उसका बौद्धो या दैत्यो द्वारा दूषण पीछे की जोड तोड़ है।

४. केवल 'आइने अकबरी' मे ऋषि का नाम महाबाहु दिया है।

से कम पद्मगुप्त के समय से सभी अब तक परमारों को अग्नि-वंशी मानते रहे हैं।

५ तो क्या वास्तव मे परमार अग्निवंशी थे ? हम सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी क्षत्रिय मानने के लिये तैयार हैं, तो अग्निवंशी क्षत्रिय क्यों नहीं ? सूर्य और चन्द्र से वंश चल सकता है तो अग्नि से क्यों नहीं ? प्रश्न संगत है। हम परम्परा के आधार पर क्षत्रियों को सौर, चान्द्र या आग्नेय मानते हैं, किन्तु यह परम्परा प्राचीन होनी चाहिये। वह महाभारत काल तक नहीं तो कम से कम बुद्ध और महावीर के समय तक तो पहुँचे। सौर और चान्द्र वंशों की परम्पराएं और उनका परम्परागत ऐतिह्य पर्याप्त प्राचीन है। अग्निवंशी क्षत्रियों की उत्पत्ति की कथा दसवीं शताब्दी से पूर्व नहीं पहुँचती।

६ वास्तव मे परमारोत्पत्ति की यह कथा रामायण के एक परतर स्तर के आधार पर खडी कर दी गई है। बालकाण्ड के अध्याय ५४ और ५५ मे विश्वामित्र ने वसिष्ठ की कामधेनु का हरण किया। इससे क्रुद्ध होकर वसिष्ठ की आज्ञा से कामधेनु ने अपने विण्मूत्रादि से पह्लवों, किरातों, शकों, बर्बरों, यवनों, म्लेच्छों, हारीतों और काम्बोजों को उत्पन्न किया। इन्होंने विश्वामित्र की सेना को नष्ट कर दिया। कामधेनु फिर वसिष्ठ के पास पहुँच गई[५]। परवर्ती कथाओं मे भी वसिष्ठ, कामधेनु

---

५ अधिक विवेचन के लिये 'राजस्थानी' खण्ड १ भाग २ पृ ५३–५५ पर लेखक का निबन्ध पढ़े ।

और विश्वामित्र वर्तमान हैं, किन्तु वर्वरों, यवनों, शकों आदि का स्थान परमारों को मिल चुका है। उनकी उत्पत्ति भी कामधेनु के विण्मूत्र से नहीं वसिष्ठ के मन्त्रपूत अग्निकुण्ड से है। ऐतिहासिक सभवतः इस नवीन कल्पना की प्रशंसा कर सकें, किन्तु उधार लेकर परिष्कृत की हुई इस कथा को सत्य मानने के लिये निश्चित ही वह विवश नहीं है। परमारों को या किसी अन्य जाति को अग्निवंशी मानने के लिये ऐतिहासिक को इससे सवल, सुदृढ़ एवं प्राचीन प्रमाण चाहिये।

७. किन्तु इन कथाओ को दुराधार मानते ही—याद रहे सर्वथा निराधार नहीं—प्रश्न फिर वहीं पहुँचता है जहां से हमने विषय को आरम्भ किया था, यानि ये परमार थे कौन ? वाट्सन, फॉर्वस, कैम्पवेल, देवदत्त रामकृष्ण भण्डारकर आदि विद्वानों ने इन्हें गूर्जरों की शाखा माना है। उनका विश्वास है कि ईस्वी सम्वत् की पांचवीं या छठी शताब्दी में इन्होंने भारतवर्ष में प्रवेश किया। वाट्सन के कथनानुसार परमारों की चावड़ा शाखा के लिये गूर्जर शब्द का प्रयोग किया गया है[६]। फॉर्वस ने भी चावड़ा राजा के लिये 'गूर्जर-राज' शब्द के प्रयोग का निर्देश किया है[७]। डाक्टर भण्डारकर ने प्रतिहारों को गूर्जर मान कर बाकी सब अग्निवंशियों को गूर्जर मानना समुचित समझा है[८]। किन्तु ये सब कल्पनाएं निराधार हैं। पुराने ग्रन्थों में गूर्जर शब्द प्रायः गुजरात या गुजराती का पर्यायवाची है। अतः गूर्जरराज

---

६. देखें धीरेन्द्रचन्द्र गांगुली का 'परमारो का इतिहास' ७. वही ८. वही

का अर्थ प्राय गूजरों का राना नहीं, अपितु गूर्जर देश या गूर्जरदेश के वासियों का राजा है। चावडे परमार होते हुए भी गूर्जर देश के स्वामी होने के कारण गूर्जरराज कहला सकते थे। पुनश्च यह भी स्मरण रहे कि चावडे परमार थे या नहीं इसमें भी कुछ संदेह है[६]। पुलकेशी (अवनिजनाश्रय) ने कलचुरी संवत् ४९० (ई० स० ७३९) के दानपत्र से स्पष्ट है कि गूजर और चावडे दो भिन्न जातियां थीं।[१०] पडिहारों को भी इसी प्रकार गूजर मानना भ्रान्तिमात्र है[११], और उन्हें किसी तरह गूजर मान भी लिया जाय तो उनसे सर्वथा भिन्न परमार जाति को गूजर मानने के लिये हम किस तरह विवश हैं?

८ डा० धीरेन्द्रचन्द्र गागुली की धारणा है कि परमार मान्यखेट के राष्ट्रकूटों के वंशज हैं। वे परमारों को न विदेशी समझते हैं और न गूजर, किन्तु वे इतना अवश्य समझते हैं कि परमार उत्तर भारतीय नहीं, अपितु दक्षिणी थे और उनका उद्गम मान्यखेट के राजवंश से हुआ है। प्रमाणस्वरूप उन्होंने हरसोले के निम्नलिखित अभिलेख का निर्देश किया है[१२] —

परमभट्टारक-महाराजाधिराजपरमेश्वर—

श्रीमदमोघवर्षदेवपादानुध्यात परमभट्टारक—

---

६ एतद्विषयक उदाहरणों के लिये 'पूना ओरियंटलिस्ट' (Poona Orientalist) में मेरा 'प्रतिहारों की उत्पत्ति' नामक लेख देखें।

१० ओझा—राजपूताने का इतिहास भा १ पृ १६३।

११ टिप्पणी ६ में निर्दिष्ट लेख देखें।

१२ परमारों का इतिहास पृ ६।

महाराजाधिराजपरमेश्वर-श्रीमदकालवर्षदेव-
पृथ्वीवल्लभ-श्रीवल्लभ नरेन्द्रपादानां ।
तस्मिन् कुले कल्मपमोपदक्षे जातः प्रतापाग्निहतारिपक्ष.
वप्पैयराजेति नृपः प्रसिद्धस्तमात्सुतोभूदनु वैरिसिंह (हः) ॥१॥

दृप्तारिवनितावक्त्रचन्द्रबिम्बकलंकता ।
न धौता यस्य कीर्त्यापि हरहासावदातया ॥२॥
दुर्व्वारवैरिभूपालरणरंगैकनायकः ।
नृपः श्रीसीयकस्तस्मात्कुलकल्पद्रुमोभवत् ॥३॥

प्रथम समस्त पद के बाद के विराम को हम निरर्थक समझें तो वि० सं० १००५ का यह लेख अवश्य सिद्ध करेगा कि परमार राष्ट्रकूटों के वंशज थे। किन्तु ऐसा मानने में महान् आपत्ति यही है कि इस दानपत्र के दाता सीयक के पुत्र मुञ्ज के दरबारी कवि पद्मगुप्त ने नवसाहसाङ्कचरित में परमारों की उत्पत्ति का स्पष्टतः इससे सर्वथा भिन्न वर्णन दिया है और आबू को परमारों का आदि स्थान माना है, मान्यखेट को नहीं। यह संभव नहीं हो सकता कि परमार बीस या पच्चीस वर्ष के अन्तर में ही राष्ट्रकूटों से अपनी उत्पत्ति को भूल गये हों; और इस विषय में भूल कोई सामान्य व्यक्ति नहीं अपितु एक ऐसा कवि करे जिसका राजवंश से अनेक वर्षों से घनिष्ट सम्बन्ध हो और जो स्वयं राजा की आज्ञा से उसके वंश और चरित का वर्णन कर रहा हो।

६. अभिलेख की शैली भी कुछ विचित्र है। किसी कुल के

वर्णन से पूर्व प्राय दाता के पूर्वपुरुषों का वर्णन रहता है[१३]। अमोघवर्ष और अकालवर्ष, चाहे वे अमोघवर्ष प्रथम और कृष्ण द्वितीय हों या अमोघवर्ष द्वितीय और कृष्ण तृतीय, वप्पयराज के पूर्व पुरुष होने का दावा नहीं कर सकते। उनमें से एक का समय वही है जो वप्पयराज का, और दूसरा वप्पयराज का भी नहीं, सीयक का समकालीन था।

१८ अभिलेख का कुछ भाग सम्भवत उत्कीर्ण न हो सका है। पूर्ण अभिलेख के उदाहरण की तौर पर हम मिहिरभोज का सन ८६४ का अभिलेख ले सकते हैं। इसका आरम्भ 'परम-भट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीरामभद्रपादानुध्यात परमभट्टारक-महाराजाधिराजपरमेश्वर - श्रीभोजदेवपादानामभि - प्रवर्धमान-कल्याणविजयराज्ये," इन शब्दों से होता है। हरसोले के अभिलेख मे यदि "अभिप्रवर्धमान कल्याणविजयराज्ये" शब्द न छूट गये होते तो यह सर्वथा भोज के लेख के समान होता।

---

१३ उदाहरण के लिये रघुवंश का वर्णन देखें। इसका आरम्भ रघुवंश के पूर्वपुरुष से होना है। बीच के राजाओं के इतिहास को छोड़ने के लिये प्रथमश्लोक का रूप है —

जिस प्रकार इस 'तद वय शुद्धिमति दिलीप इति राजेन्दु-रिन्दु क्षीरनिधाविव'' श्लोक के 'तदन्वये शुद्धिमति' का सम्बन्ध पूर्ववर्ती राजा ववस्त से है उसी प्रकार हरसोले के शिलालेख के 'तस्मिन् कुल कल्मषमोषदक्षे' का सम्बन्ध परमार वंश के किसी पूर्व पुरुष से होना चाहिये। किन्तु कृष्ण द्वितीय वप्पयराज का समकालीन और कृष्ण तृतीय उससे परवर्ती था।

इन शब्दों के बाद सम्भवतः एक आध पंक्ति आदि-परमार या किसी प्राचीन परमार राजा के विषय में देकर अभिलेख के "तस्मिन् कुले कल्मषमोपदत्ते", श्लोक का आरम्भ हुआ होगा।

११. एक दूसरी संभावना भी हो सकती है। वाकाटकों की महाराज्ञी प्रभावती गुप्ता सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की पुत्री थी। उसके अभिलेखों में पहिले गुप्तों की और उसके बाद वाकाटकों की वंशावली है। सभवतः सीयक द्वितीय किसी राष्ट्र-कूट राजकुमारी का पुत्र हो। इसलिये उसके हरसोले के अभिलेख का आरम्भ राष्ट्रकूट राजाओं के नामों से किया गया है। अभिलेख के सम्पादकद्वय श्री के. एन. दीक्षित और डी. बी. दिस्कलकर द्वारा सूचित यह संभावना भी असगत नहीं कही जा सकती, यद्यपि इसमें भी यह मानना पड़ेगा कि अभिलेख का कुछ भाग उत्कीर्ण होने से रह गया है।

१२. अतः निष्कर्ष यही है कि हरसोले के अभिलेख के आधार पर परमारों को राष्ट्रकूट मानना भी उचित नहीं है। वे न अग्निवंशी थे, न गूर्जर और न राष्ट्रकूट। किन्तु वे सम्मान्य राजपुत्र अवश्य थे। उनके वैवाहिक सम्बन्ध बड़े-बड़े राजघरानों में हुए थे। उनकी जाति के विषय में सबसे प्राचीन उल्लेख मुञ्ज के दरबार के पंडित हलायुध का है। उसने मुञ्ज के लिये 'ब्रह्मक्षत्रकुलीन' शब्द का प्रयोग किया है। इससे स्पष्ट है कि उस समय परमार ब्रह्मक्षत्र माने जाते थे। सम्भवतः 'ब्रह्मक्षत्र' शब्द से वे जातियां गणित होती थीं जिनमें ब्राह्मणों

और क्षत्रियों दोनों के गुण विद्यमान हों। परमार विद्वान थे और वीर भी। अत ब्रह्मक्षत्र शब्द उनके लिये उपयुक्त था। यह भी सभव है कि प्रारम्भ मे परमार ब्राह्मण हों, धर्म को सकट मे देख कर शु ग, सातवाहन, कादम्ब, पल्लव आदि ब्राह्मण कुलों की भाति उन्होंने भी तलवार सभाली और समय पाकर क्षत्रिय माने जाने लगे। गुहिलों और चौहानों के विषय मे भी अनेक विद्वानों ने कुछ ऐसी सभावना की है। ऊहापोह इससे अधिक नहीं बढ सकता और न उसके अधिक बढने की आवश्यकता ही है। जिस जाति ने वाक्पति और भोज, उदयादित्य एव जगद्देव जैसे विविधवीरो को उत्पन्न किया वह वास्तव मे महान थी, उसका प्रभव अत्युच्च था। चाहें परमार प्रारम्भत ब्राह्मण रहे हों या क्षत्रिय, दक्षिणी या उत्तर भारतीय, वे राजपुत्रों मे तब भी श्रेष्ठ थे और अब भी श्रेष्ठ है। अपनी प्राचीन गरिमा से परमार वश अब भी गौरवान्वित है।

[ राजस्थान भारती – भाग ३ – अक २ मे प्रकाशित
डा० दशरथ शर्मा का लेख ]

# परिशिष्ट ४

# राजा भोज

मालवे का परमार राज्य मुञ्ज के समय अपने उत्कर्ष पर पहुँच चुका था। उसने गुहिलों को पराजित कर आहाड़ को नष्ट कर डाला। गूर्जरेश मूलराज उससे हार कर राजस्थान के मरु भाग में अपनी जान बचाने के लिये भटका। सहस्रार्जुन का वंशज युवराज द्वितीय अपनी राजधानी त्रिपुरी को उससे न बचा सका। केरल और चोल देश तक उसकी धाक थी। लाट और मारवाड़ के सामन्त उसके सामने नतमस्तक थे। किन्तु तैलप के हाथों उसकी पराजय और मृत्यु के बाद मालवे के भाग्य-नक्षत्र का प्रकाश कुछ धीमा पड़ गया। उसके छोटे भाई सिन्धुराज ने अपने राज्य के आरम्भ में कुछ सफलता अवश्य प्राप्त की, किन्तु यह चिरस्थायिनी न हुई। सन् १०१० से पूर्व वह गुजरात के राजा चामुण्डराज चौलुक्य से बुरी तरह से हारा। कुछ विद्वानों का तो यह भी अनुमान है कि वह इस युद्ध में धाराशायी हुआ। फलतः जब भोज सिंहासन पर बैठा, उस समय मालवे की स्थिति कुछ विशेष अच्छी न रही होगी। भोज की आयु छोटी थी। शत्रु राज्य के चारों ओर मंडरा रहे थे। राजा को बालक और निःशक्त समझ कर सामन्त विद्रोह के लिये उद्यत हो रहे थे।

जिन राज्यों ने मुंज और सिन्धुराज से हार खाई थी, वे सिन्धुराज की असामयिक मृत्यु को प्रतिशोध का अच्छा अवसर समझते थे। ऐसी स्थिति मे राज्य का केवल समुद्धार ही नहीं, उसकी ख्याति और शक्ति की भी वृद्धि करना भोज जैसे महान् व्यक्ति का ही कार्य था। मेरुतुंग ने उसका राज्यकाल पचपन वर्ष माना है। किन्तु वास्तव में सम्भवत उसने पैंतालीस वर्ष ही राज्य किया। निम्नलिखित अभिलेखों और उल्लेखों मे उसके राज्य के कुछ सम्वत हैं —

| | | |
|---|---|---|
| १ | मोडासा अभिलेख | वि स १०६७ |
| २ | महुडी अभिलेख | ,, ,, १०७४ |
| ३ | बासवाडा ,, | ,, ,, १०७६ |
| ४ | बेतमा ,, | ,, ,, १०७६ |
| ५ | उज्जैन ,, | ,, ,, १०७८ |
| ६ | देपालपुर ,, | ,, ,, १०७६ |
| ७ | सरस्वती मूर्ति का अभिलेख | ,, ,, १०६१ |
| ८ | राजमृगाङ्ककरण | शक स ६६४=वि स १०६६ |
| ९ | तिलकवाडा अभिलेख | वि ,, ११०३ |
| १० | कलवन ,, | ,, ,, ११०५ |
| ११ | दशबलीय चिन्तामणि सारणिका | शक ,, ६७७=वि स १११२ |

इनमे अन्तिम उल्लेख से निश्चित है कि भोज वि स १११२ तक जीवित था। इसी साल मे उसके उत्तराधिकारी जयसिंह ने माधाता ताम्रपत्रो मे लिखित दान दिया। इसलिये

यही उसका निधन संवत् भी है। अभिषेक का समय वि.सं. १०६७ के बाद में नहीं रखा जा सकता। भोज को हम उस राजकुमारी का पुत्र मानें, जिससे सिन्धुराज ने अपने राज्यारोहण के बाद विवाह किया था तो वि.सं. १०६७ में भी वह अल्पवयस्क ही रहा होगा। उससे दस वर्ष पूर्व तो उसके राज्य सभालने का प्रश्न ही नहीं उठता। सिन्धुराज की मृत्यु कुछ बड़ी उम्र में न हुई थी। अतः किसी दूसरी रानी की सन्तान होने पर भी उसकी आयु वि.सं. ११६७ में कुछ अधिक न रही होगी।

भोज ने गद्दी पर बैठने पर कुछ वर्ष राज्य की स्थिति सुधारने में ही व्यतीत किये होंगे। उसके मोडासे के अभिलेख से सिद्ध है कि मोडासे के आसपास के गुजरात के प्रदेश को उसने हाथ से न निकलने दिया। यह उसके दादा हर्ष सीयक की बपौती थी, और इसी पर अधिकार के लिये सम्भवत; सिन्धुराज के समय संघर्ष हुआ हो। भोज ने अपनी बपौती की रक्षा कर परमारों की पराजय को भी विजय में बदल दिया। इसके लगभग सात साल के बाद उसने महुडी (वि.सं. १०७४) में उल्लिखित दान दिये। किन्तु उस समय तक सम्भवतः भोज का ध्यान अपने राज्य के सुदृढ़ीकरण और सुरक्षा पर ही लगा हुआ। अभिलेख में उसके लिये परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर आदि पदवियां प्रयुक्त हैं जो उसके स्वातन्त्र्य और उच्चाभिलाषा की सूचक हैं। किन्तु इन पहले दो शिलालेखों में भोज की किसी विजय का उल्लेख नहीं है।

- किन्तु इसके कुछ समय बाद ही स्थिति बदली। परमार राज्य के शत्रुओं से बदला लेने की अग्नि उसके हृदय में सदा धधकती रही होगी। किन्तु गुजरात पर न आक्रमण कर उसने सर्व प्रथम मुञ्जराज की हत्या करने वाले कल्याण के चालुक्यों पर आक्रमण करना ही उचित समझा। कल्याण-राज्य के विरोधी कुछ अन्य राज्यों ने भी सम्भवत युद्ध में साथ दिया। दोनों पक्ष इस संघर्ष में अपनी विजय का उल्लेख करते हैं। बेलगावे शिलालेख ने कल्याण राज चालुक्य जयसिंह को भोज रूपी कमल के लिये चन्द्र से उपमित किया है। जिस प्रकार दिन में विकसित होने वाली कमलिनी रात्रि के समय कुम्हला जाती है, उसी तरह भोज की कीर्ति जयसिंह-चन्द्र के उदित होने पर विनष्ट हो गई थी (इण्डियन एंटिक्वरी, ५, पृ० १७)। किन्तु भोज के शिलालेखों से तो यही प्रतीत होता है कि विजयश्री उसी के हाथ रही थी, चाहे उसे इतनी सफलता न मिली हो जितनी उसे अभीष्ट थी और संघर्ष भी कुछ समय तक चलता रहा हो। माघ शु० ५, वि० स० १०७६ (३ जनवरी, सन् १०२० ई०) के बामवाडा दानपत्र में लिखा है कि कोंकण विजय के पर्व पर परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर भोजदेव ने वटपद्रक में सौ निवर्तन भूमि भाइल नाम के ब्राह्मण को दी। इसी प्रकार कोंकण विजय ग्रहण के पर्व पर स्थानेश्वर-विनिर्गत पण्डित देल्ह को भोज ने नालतडाग नाम का गाव दिया जो सम्भवत कैरा जिले का नाल नाम का गाव है। इस दान का उल्लेख भोज के बेतमा दानपत्र में है जिसकी तिथि भाद्रपद

शु० पूर्णिमा सम्वत् १०७६ (सितम्बर, १०२० सन) है। इन दानपत्रों की भाषा और तिथि दोनों ही विवेचनीय है। यदि दोनों में एक ही घटना का निर्देश होता तो एक पर्व माघ और दूसरा भाद्रपद में न पड़ता। किन्तु दानपत्रों की भाषा से ही स्पष्ट है कि ये घटनाएं विभिन्न थीं। पहले दानपत्र में केवल 'कोंकणविजय' का उल्लेख है जिससे प्रतीत होता है कि भोज ने कोंकण में कोई विजय प्राप्त की। इस उल्लेख को हम चालुक्य जयसिंह के वेलगांवे शिलालेख से मिला कर पढ़ें तो यह भी प्रतीत होता है कि वह अपनी विजय के बाद कुछ विशेष अग्रसर न हो सका; चालुक्य सेना ने उसकी गति रोक दी, और अपनी इस सफलता का ही जयसिंह ने वेलगांवे के शिलालेख में उल्लेख करवाया[1]। किन्तु कुछ समय बाद सम्भवतः और परमार सैन्य कोंकण में जा पहुँची; जयसिंह हारा और भोज ने केवल कोंकण विजय ही नहीं, कोंकण विजयग्रहण का पर्व मनाया। उसने विजय भी प्राप्त की और कोंकण को भी हस्तगत कर लिया। जयसिंह के शक संवत् ९४६ (वि० स० १०८१) के मिरज दानपत्र में सप्त कोंकणों के अधीश्वरों को जीत कर उसके अन्यत्र आक्रमण करने का उल्लेख है जिससे यह भी सिद्ध है कि कोंकण का राज्य सन् १०२४ ई० (वि० सं० १०८१) से पूर्व जयसिंह के हाथ से निकल चुका था। वि० स० ११०५ में परमार सामन्त यशोवर्मा ने नासिक जिले में कुछ दान दिए। नासिक कोंकण

---

१. चालुक्य विजय का उल्लेख कुलेनूर अभिलेख मे भी है। भोज की सैन्य का गतिरोध गौतम-गंगा (गोदावरी) के किनारे हुआ।

की सीमा मे सटा है। अत यह अनुमान भी सम्भवत असङ्गत न हो कि स० ११०४ तक यह विजित प्रदेश भोज के अधिकार मे बना रहा।

भोज के निजी अन्य दानपत्रों से उसके जीवन पर कुछ विशेष प्रकाश नहीं पडता। किन्तु उदयपुर प्रशस्ति आदि मे उसका पर्याप्त यशोगान है। अर्जुन वर्मा की धार प्रशस्ति ने उसे सार्व-भौम की उपाधि दी है और उसे त्रिपुरी के अधीश्वर गांगेयदेव कलचुरि को हराने का श्रेय दिया है। उदयपुर प्रशस्ति ने भोज को पृथु से उपमित किया है और लिखा है कि कैलास से मलय तक और अस्ताचल से उदयाचल तक की पृथ्वी उसके अधिकार मे थी। अन्य शब्दों में इस प्रशस्ति ने भी भोज को दिग्विजयी सार्वभौम राजा माना है। उसकी विशेष विजयो मे चेदीश्वर, इन्द्ररथ, तोग्गल, भीम, कर्णाटेश, लाटेश, गूर्जरेश और तुरुष्क की पराजय को इसने विशेष रूप से उल्लेख्य समझा है।

अर्जुन वर्मा की धार प्रशस्ति से यह स्पष्ट है कि भोज द्वारा पराजित चेदिदेश का राजा गाङ्गेयदेव कलचुरि था जिसने विक्रम सम्वत् १०७७ से १०९८ तक राज्य किया। दोनों राजा प्राय एक साथ ही गद्दी पर बैठे थे। दोनों ही कल्याणी के चौलुक्यों के शत्रु थे। इसलिये आरम्भ मे दोनों राजा मित्र थे, और भोज ने जब वि० सं० १०७६ के लगभग जयसिंह पर आक्रमण किया तो गाङ्गेय ने उसका साथ दिया। गोदावरी के किनारे अपनी गति के रुद्ध होने पर परमार सैन्य ने सम्भवत

किसी अन्य मार्ग से बढ़ कर कोंकण पर अधिकार कर लिया। किन्तु चेदीश के हाथ शायद पराजय के अतिरिक्त कुछ न लगा। फलतः यह मैत्री शीघ्र ही शत्रुत्व में बदल गई। भोज ने गाङ्गेय पर आक्रमण किया। भोज पराजित हुआ और सम्भवतः अपने राज्य का कुछ भाग खो बैठा।[२]

इन्द्ररथ सम्भवतः आदिनगर का राजा था। अपनी उत्तरी अभियान में चोलराज अधिराजेन्द्र के दण्डनाथ ने उसे पराजित कर कैद किया था। यह घटना वि० सं० १०८१ से पूर्व हुई। भोज ने अपने राज्य के आरम्भ में ही गाङ्गेयदेव कलचुरि से मिल कर शायद इस पर आक्रमण किया हो। अन्यथा शत्रु राज्यों में से गुजर कर आदिनगर तक पहुँचना दुष्कर था।

तोग्गल की पहिचान कठिन है। कुछ विद्वान् इसे भोज द्वारा पराजित तुरुष्क समझते हैं। किन्तु हमारे मतानुसार तो उदयपुर प्रशस्ति में वर्णित सभी परस्पर विभिन्न हैं। तोग्गल भी किसी भारतीय भू भाग का राजा रहा होगा।

भीम गुजरात का चौलुक्य राजा भीमदेव प्रथम है जिसने अपनी चतुर्दिक् विजयों से चौलुक्यों के राज्य का प्रसार किया। भीम और भोज दोनों ही उच्चाभिलाषी थे। प्राचीन वैमनस्य भी दोनों पड़ोसियों में वर्तमान था ही। किन्तु भोज कुछ अधिक

---

२. गाङ्गेय पर भोज की विजय का उल्लेख पारिजातमञ्जरी नाटिका की नन्दी मे भी है। कलवन अभिलेख मे बिना नाम के चेदेशी की पराजय का निर्देश है।

शक्तिशाली था। मेरुतुङ्ग के कथनानुसार भोज के सेनापति दिगम्बर-सम्प्रदायानुयायी कुलचन्द्र ने भीम की अनुपस्थिति में चौलुक्यों की राजधानी अणहिलपत्तन को लूटा, और मंत्री सातू से जय पत्र लिखा कर वापिस आया। आबू के राजा धन्धुक ने जब भीम का आधिपत्य स्वीकार न किया तो भोज ने उसे धारा में रखा। अन्यत्र भी इनका कुछ न कुछ संघर्ष हुआ होगा जिसमें भीम की पराजय सम्भव है।

कर्णाट राजा जयसिंह के विरुद्ध भोज की कोंकण में विजय और गोदावरी पर एक पराजय का उल्लेख हम कर चुके हैं। लाटेश शायद कीर्तिराज का पुत्र वत्सराज, जिसका राज्यकाल शक सं० ६४०=वि० सं० १०७५ के बाद आता है, या वत्सराज का पुत्र त्रिभुवनपाल हो जिसका नाममात्र त्रिविक्रमपाल के शक सम्वत् ६६६ के ताम्रपत्र में मिला है। उल्लेख की रीति से प्रतीत होता है कि उसने राज्य नहीं किया।

गुर्जरेश को अनेक विद्वान् गुजरात के अधिपति भीमदेव के अर्थ में लेते हैं। यह अर्थ असम्भव नहीं है। किन्तु एक के बाद दूसरा नाम गिनाने से यह सम्भावना भी हो सकती है कि यह कान्यकुब्ज का अधीश्वर राज्यपाल हो। महोबे के एक शिलालेख के अनुसार भोज और कलचुरिचन्द्र (गाङ्गेय) चन्देल्लराज विद्याधर की सेवा में प्रस्तुत रहते थे। महामहोपाध्याय डा० मीराशी ने इससे यह अनुमान किया है कि गाङ्गेयदेव और भोज ने विद्याधर चन्देल्ल को गुर्जर-प्रतिहार राजा राज्यपाल के

विरुद्ध सहायता दी होगी। अनुमान असंगत प्रतीत नहीं होता। सहायता को भी नौकरी का रूप देना प्रशस्तिकारों के लिये कोई बड़ी बात नहीं है।

भोज का समसामयिक तुरुष्क राजा महमूद गजनवी था जिसने एक के बाद अनेक आक्रमण भारत पर किये। प्रसिद्ध यात्री अल्बेरूनी ने भी धारेश्वर भोज का नाम दिया था, जिससे भोज की तत्कालीन ख्याति का अनुमान किया जा सकता है। वि. स. १०८१ में जब महमूद सोमनाथ के विरुद्ध चढ़ा, उसका सामना करने की हिम्मत बहुत कम राजाओं में हुई। लोद्रवा, चिकलोदर-माता, और सत्यपुर आदि स्थानों में मन्दिरों को भ्रष्ट करता हुआ जब वह गुजरात पहुँचा तो भीमदेव प्रथम भाग कर कंथा-दुर्ग में घुस गया। मुसलमानी सेना बढ़ी, उसने सोमनाथ के मन्दिर को तोड़ा और सब लूट का सामान वापस लेकर जाने की तैयारी की। किन्तु यह कार्य सरल न था। भोज उसके अचानक आक्रमण का सामना न कर सका था; किन्तु अब सर्वत्र कोपाग्नि प्रज्वलित थी। किताब जैनुल-अखबार ने इसी तथ्य को अपने ढंग से इन शब्दों में कहा है: "उस स्थान महमूद वापस मुड़ा, और कारण यह था कि हिन्दुओं का राजा परमदेव रास्ते में था और अमीर (महमूद) को डर था कि कहीं यह महान् विजय बिगड़ ना जाए। वह सीधे रास्ते से नहीं लौटा। एक रास्ता दिखाने वाले को लेकर वह मन्सूरा और सिहून के किनारे होता हुआ मुल्तान गया।" दो सौ वर्ष के बाद इसी घटना का उल्लेख करते हुए इब्न उल अथीर ने भी यही बात लिखी है।

यह परमदेव कौन था। जैसा श्री कन्हैयालाल मुन्शी ने बताया है, इस परमदेव को, फरिश्ता के आधार पर, भीमदेव समझना ठीक न होगा। भीम की ताकत उस समय तक कुछ विशेष न थी। वह तो अपने प्राणों को बचाने के लिये कथकोट में जा छिपा था। परमदेव को इसी तरह आबू का कोई परमार राजा मानना भी ठीक नहीं है। वह तो और भी अधिक शक्तिरहित था। तो क्या यह सम्भव नहीं है कि भोजदेव को ही ज़ाइनुल अखबार ने परमदेव में परिवर्तित कर दिया हो? शायद उसी की प्रबल वाहिनी से डर कर सीधे रास्ते को छोड़ कर महमूद मरुस्थल में जा घुसा हो। विषय अभी गवेष्य है, निस्संदिग्ध नहीं।

भोज की अनेक अन्य विजयों का भी हम तत्कालीन शिला लेखों और साहित्य की पुस्तकों से कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। मुञ्ज ने गुहिलों को हरा कर उनकी राजधानी आहाड़ को नष्ट किया था। शायद उसी ने या भोज ने चित्रकूट को जीता। इस दुर्ग पर भोज द्वारा बनवाए हुए त्रिभुवन-नारायण के शिव मन्दिर का, जिसे अब जनता अद्भदजी (अद्भुतजी) या मोकलजी का मन्दिर कहती है, महाराणा मोकल ने सम्वत् १४८५ में जीर्णोद्धार करवाया था। शाकम्भरी पर भी भोज ने आक्रमण किया। यहां का चौहान राजा वीर्यराम भोज से युद्ध करता हुआ मारा गया [पृथ्वीराज विजय, ५, ६७]। चन्द्रावती विग्रहसिंह के दूनगढ़ के शिलालेख में लिखा है कि अभिमन्यु ने रथों और अश्वों के चालन में जो चातुर्य

प्रदर्शित किया, उसकी श्री भोजदेव ने भी प्रशंसा की। इस कथन का शायद यह अभिप्राय हो सकता है कि अभिमन्यु ने किसी युद्ध में भोज की सेना की अध्यक्षता की थी; और यह तभी संभव हो सकता है जब हम यह मानें कि दूबकुण्ड के राज्य ने भी भोज की अधीनता स्वीकार की थी। ग्वालियर को भी हस्तगत करने का सम्भवतः भोज ने प्रयत्न किया। किन्तु इसमें उसे सफलता न मिली। ग्वालियर के अधिपति कीर्तिराज कच्छपघात ने यह दावा किया है कि उसने मालवे के असंख्य सैन्य को जीता था। कीर्तिराज के समय [लगभग १०५२-१०६२ वि. सं.] को ध्यान में रखते हुए हम भोज को ही कीर्तिराज का विरोधी मान सकते हैं। नाडोल के चौहानों के विरुद्ध भी इसी प्रकार भोज को विशेष सफलता न मिली। उसने भोज के सेनापति साढ़ को मारा और शाकम्भरी परमारों से छुटवाली।

भोज के राज्य का अधिकांश भाग पर्याप्त यशः पूर्ण रहा। किन्तु अन्तिम दिनों में स्थिति बदलने लगी। संवत् १०८७ के बाद गाङ्गेयदेव कलचुरि ने अपनी शक्ति में काफी वृद्धि की थी। उसका पुत्र कर्ण (वि. सं० १०६८–११३०)। और भी अधिक योग्य निकला। भोज इस समय चारों ओर से शत्रुओं से घिरा था। गुजरात के चौलुक्य, कल्याण के चालुक्य, शाकम्भरी और नाडोल के चौहान, मेदपाट के गुहिल, ग्वालियर के कच्छपघात—ये सभी उस समय भोज के शत्रु बन बैठे थे। भोज ने अनेक विद्वानों को अपना मित्र बनाया; किन्तु राजाओं में

किसी को वह अपना मित्र न रख सका। उसके ऐश्वर्य की कथाएँ ही उसकी शत्रु बन बैठी होंगी। जब कवि लोग कहते—

भो भो श्री भोजदेव श्रयत विनयन शत्रव क्षात्रवर्गा
प्राणत्राणाय नोवा न भवति भवता क्वाप्यरण्यं शरण्यम्

(शार्ङ्गधरपद्धति)

(अरे विरोधी शत्रुवर्ग तुम विनय से श्री भोजदेव की शरण ग्रहण करो। अन्यथा तुम्हें अवश्य ही वन की शरण लेनी पड़ेगी)[३]

तो यह विरोधाग्नि और अधिक बढ़ती होगी। किन्तु भोज से अकेले पार पाना दुष्कर था। उसे हराने का केवल मात्र उपाय शत्रुओं की सहृति थी। कलचुरिराज कर्ण के नेतृत्व में भोज के शत्रुओं ने इसी उपाय का अवलम्बन किया।

धारा पर शत्रुओं के आक्रमण का पूर्ण विवरण अप्राप्य है। किन्तु हेमचन्द्र सूरि और मेरुतुङ्ग के कथन से यह निश्चित है कि भोज पर दुतर्फा आक्रमण हुआ, पूर्व से चेदिराज कर्ण का और पश्चिम से गुजरात के अधीश्वर भीमदेव प्रथम का। अन्य छोटे-मोटे राजाओं ने उनका साथ दिया होगा। भाग्यवशात् भोज इस समय रुग्ण था। बहुत छिपाने से भी

---

३ शत्रुओं का नामाभिधान-सहित तिरस्कार इस श्लोक में है —

गौड क्रोड पयोधेर्विशति निवसनेरप्रमद्रोगिरीन्द्रं
कर्णाट पट्टबन्ध न भजति भजते गूजरो निर्झराणि।
चेदिर्म्लानोपतेऽस्त्रं क्षितिपति सुभट: कान्यकुब्जोऽब्रुब्जो
भोजत्वत्तःप्रयाणप्रसरभयभरव्याकुलो राजलोक: ॥

यह बात शत्रुओं से न छिप सकी। स्थिति वास्तव में गम्भीर थी। मेरुतुंग ने एक कवि के शब्दों में ठीक ही वर्णन किया है:—

अम्बयफलं सुपक्कं विएटं सिढिलं समुब्भडो पवणो ।
साहा मल्हणसीला न याणिमो कज्जपरिणामो ॥

"आम का फल सुपक्व है, वृन्त शिथिल हैं और पवन अत्यन्त वेगयुक्त। शाखाएं मुर्भा रही हैं (?)। न जाने क्या परिणाम होगा।"

भोजदेव की मृत्यु होते ही परिणाम निश्चित हो गया। कर्ण सम्भवत: भीम से पूर्व धारा पहुँचा और कुछ समय के लिये परस्पर झगड़ते परमारों के हाथों से धारा निकल गई। अनेक राजाओं से वैभव की प्राप्ति होने पर भी विल्हण जैसे महा कवियों को उसके बाद यही दुःख रह गया कि वे भोज के समय धारा न पहुँचे।

भोज का भाग्यसूर्य इस तरह अस्ताचल पहुँचा। किन्तु उसकी महत्ता और गुणगरिमा को भारत न कभी भूला और न भूल सकता है। वह श्री और सरस्वती दोनों का निवास-स्थान था। विद्वानों ने उससे रक्षा प्राप्त की; साहित्य-सरस्वती उस समय दश-दिक्-स्रोता होकर वह निकली। स्वयं भोज या उसके अध्यक्षत्व में रचित कुछ ग्रन्थ निम्नलिखित हैं :—

१. *योग सूत्र की टीका राजमार्तण्ड*—योग सूत्रों पर व्यास का भाष्य और उस पर वाचस्पति मिश्र की तत्ववैशारदी टीका

प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। किन्तु राजमार्तण्ड टीका संक्षिप्त होती हुई भी गम्भीरार्थक है। इसके पढने मे शाङ्करी शैली का सा आनन्द आता है। अनेक शब्दग्रन्थिया और ज्ञानग्रन्थिया भी स्वत सुलझती है।

२ *भोजराजीय शब्दानुशासन*—भोज के शब्दानुशासन ने भी अच्छी ख्याति प्राप्त की थी। राजमार्तण्ड टीका मे इसका निर्देश होने से यह निश्चित है कि इस ग्रन्थ की रचना राजमार्तण्ड से पूर्व हुई थी। ग्रन्थ प्रकाशित है।

३ *राजमृगाङ्क (वैद्यक)*—वैद्यक पर भोज द्वारा रचित राजमृगाङ्क नाम के ग्रन्थ का उल्लेख भी राजमार्तण्ड मे है।

४ *राजमृगाङ्क (ज्योतिष)*—इसी प्रकार ज्योतिष पर भी भोज ने राजमृगाङ्क नाम के ग्रन्थ की रचना की। इसका रचनाकाल शक स० ९६४=वि० स० १०९९ है। योगसूत्रीय टीका राजमार्तण्ड मे इसका निर्देश होने से उसका और उसमे निर्दिष्ट ग्रन्थों का रचना काल स० १०९९ से पूर्व का है।

५ *राजमार्तण्ड (धर्मशास्त्र)*—राजमार्तण्ड के नाम से धर्मशास्त्र पर भी भोज ने एक बृहद् ग्रन्थ की रचना की जिसका परवर्ती अनेक धर्म ग्रन्थों मे उल्लेख है। इनसे प्रतीत होता है कि कुछ सामाजिक विषयों पर भोज का मत प्राचीन लेखकों से अधिक उदार था।

६ राजमार्तण्ड (वैद्यक)

७. *भुजबलिनिबन्ध*—यह भोज का एक और धर्मशास्त्रीय ग्रंथ था। इसका प्राचीन निबन्धों में उल्लेख है।

८. *सरस्वतीकण्ठाभरण*—यह साहित्यालोचन का प्रसिद्ध ग्रंथ है। इस ग्रंथ के अध्ययन से पाठक जान सकते हैं कि भोज का अध्ययन कितन व्यापक था। साहित्यालोचन के प्रसङ्ग में भोज ने इस ज्ञान का अच्छा उपयोग किया है।

९. *शृङ्गारप्रकाश*—साहित्यालोचन पर भोज का दूसरा स्वतंत्र ग्रंथ शृंगारप्रकाश है। इसमें भोज ने शृंगार को मुख्य और अन्य रसों को गौण माना है।

१०. *तत्त्वप्रकाश*—इस नाम का शैव सिद्धान्त का एक ग्रंथ त्रिवेन्द्रम् ग्रंथमाला में प्रकाशित है।

११. *समराङ्गण सूत्रधार*—वास्तुकला का यह अद्भुत ग्रंथ है। मूर्तिनिर्माण आदि अनेक अन्य विषयों पर इस ग्रंथ से अच्छा प्रकाश मिलता है। ग्रंथ गायकवाड़ प्राच्य ग्रंथमाला में प्रकाशित है।

१२. *युक्तिकल्पतरु*—यह राजनीति विषयक ग्रंथ है। इसमें दूत, कोष, कृषिकर्म, बल, यात्रा, सन्धि, विग्रह, नगर-निर्माण, वास्तु-प्रवेश, छत्र, ध्वज, पद्मरागादिपरीक्षा, अस्त्र, शस्त्रपरीक्षा नौकालक्षण आदि विषयों पर विचार किया गया है। पुस्तक कलकत्ता प्राच्य ग्रंथमाला में प्रकाशित है।

१३. *शृङ्गारमञ्जरी*—यह गद्य का कथा ग्रंथ है।

इनके अतिरिक्त इनसे लगभग त्रिगुण अन्य ग्रंथ हैं जिन्हें बहुत से विद्वान भोज की कृतियां मानते हैं। इनके सम्यक् अध्ययन से ही ज्ञात हो सकता है कि ये भोज और भोज के विद्वानों की रचना हैं या नहीं। हमने ऊपर की सूचि में उन्हीं ग्रंथों को ही लिया है जो या तो हमने स्वयं देखे और पढ़े हैं या जिनके ग्रंथकर्तृत्व के विषय में सन्देह के लिये विशेष अवकाश नहीं है।

ऐसे विद्वान राजा की सभा विद्वानों से सुशोभित हुई तो आश्चर्य ही क्या है। जैन कवि धनपाल ने उसकी प्रशंसा करते हुए तिलकमंजरी की प्रस्तावना में लिखा है —

> निःशेषवाङ्मयविदोपि जिनागमोक्ता
> श्रोतुं कथा समुपजातकुतूहलस्य ।
> तस्यावदातचरितस्य विनोदहेतो ।
> राज्ञः स्फुटाद्भुतरसा रचिता कथेयम् ।

"भोज सब वाङ्मय का ज्ञाता था। तो भी उसकी यह इच्छा हुई कि वह जिनागम में कही हुई कथाएं सुने। उस स्वच्छचरित वाले राजा के विनोद के लिये यह स्वच्छ अद्भुत रस से युक्त कथा रची गई है।"

धनपाल जाति से ब्राह्मण था, किन्तु अध्ययनादि के बाद अपने भाई शोभन की प्रेरणा से उसने जैन धर्म स्वीकार किया था। मुञ्ज ने उसे सरस्वती की पदवी दी थी, और भोज के लिये वह संमान्य सलाहकार और कविबन्धु रहा होगा। प्रबन्ध-

चिन्तामणि में भोज और धनपाल के विषय की अनेक कथाएँ हैं जिनमें से अधिकतर सर्वथा कल्पनाप्रसूत हैं।

धनपाल ने अपने भाई शोभन की रचना 'तीर्थंकरस्तुति' पर वृत्ति लिखी। उसी के कहने से शान्तिसूरि नाम के जैनाचार्य धारा आए। अपनी वादशक्ति के कारण आचार्य ने भोजराज से 'वादिवेताल' नाम की उपाधि प्राप्त की। शान्तिसूरि ने तिलकमञ्जरी का शोधन और उत्तराध्ययनसूत्र टीका, अंगविद्या, धर्मशास्त्र आदि अनेक ग्रंथों की रचना की।

आनन्दपुर के निवासी उवटाचार्य ने भोज के समय वाजसनेयी संहिता पर मन्त्रभाष्य लिखा। निचुल कवि भी भोज की सभा का शृंगार था। नलोदय का रचयिता शायद इसकी सभा में रहा हो। प्रबन्धचिन्तामणिकार मेरुतुंग ने माघ, धनपाल, वररुचि आदि कवियों और कवयित्री शीता पण्डिता को उसकी सभा में रखा है। शार्ङ्गधर ने शीला भट्टारिका को उसकी सभा की कवयित्री माना है जो सम्भवतः मेरुतुङ्ग की शीता पण्डिता से भिन्न है। माघ और वररुचि का समय भोज से पर्याप्त पूर्व का है।

वास्तव में भोज की सभा के पण्डितों और कवियों का विशेष वर्णन देना असम्भव है। किन्तु उनकी कृतियां भोज के ग्रन्थों में सम्मिलित होकर अमर हैं। जहां तक साहित्य से सम्बन्ध है, भोज का अर्थ प्रायशः भोज विद्वन्मण्डल किया जा सकता है। भोज इसकी नाभि और उसकी सभा के विद्वान् उसकी अर और नेमि थे।

अपने वास्तुग्रंथों के अनुसार उसने अनेक प्रासाद बनवाए। धारा मे उसने सरस्वती के मन्दिर की स्थापना की, जो नाम और अर्थ दोनो मे ही सरस्वती-मन्दिर था। दिग्दिगन्त से आने वाले विद्वानों की यह कसौटी भारतीय विद्याओं का भण्डार और सिद्धि क्षेत्र था। अब यह सरस्वती प्रतिमा ब्रिटिश म्यूज़ियम, लण्डन मे पहुँच चुकी है। सरस्वती-सदन के स्थान पर कमालमौला नाम की मस्जिद खडी है। "हा, हन्त, भवितव्यतेदृशी।" इसी मन्दिर के पास एक कूप को, जो सम्भवत सरस्वती-कूप के नाम से प्रसिद्ध था, अब भी लोग अक्कल कुई कहते हैं। अपनी जय के स्थापन के लिये सभवत भोज ने ही जो जयस्तम्भ खडा किया था वह लाट मस्जिद के रूप मे है। श्री त्रिभुवननारायण के मन्दिर के विषय मे हम ऊपर कुछ कह चुके हैं। केदारेश्वर, रामेश्वर, सोमनाथ, सुण्डीर, काल, अनल आदि के विशाल प्रासाद भी भोज ने बनवाए थे। कश्मीर मे कपालेश्वर के मन्दिर के निकट उसने तालाब खुदवाए जिसके अवशेष अब तक वर्तमान हैं। भोपाल अब भी भोज की याद दिलाता है। उसी राज्य मे भोजसागर नाम की झील भोज ने खुदवाई जिसका क्षेत्रफल ३५० वर्ग मील था। इसके बीच का द्वीप ही सभवत वर्तमान दीप नाम का ग्राम है।

भोज ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध मे भारत का प्रतीक था। गुजरात का कुछ भाग, समस्त मालवा, राजस्थान के अनेक भाग, मध्यभारत के कुछ क्षेत्र, और महाराष्ट्र का कुछ अश उसके साम्राज्य मे सम्मिलित था। यह भारत का काफी

बड़ा भूभाग था। किन्तु उसका सांस्कृतिक साम्राज्य इससे कहीं बड़ा था। कैलास से मलय और पश्चिमाब्धि से पूर्वाब्धि तक साहित्यिक क्षेत्र में उसकी सार्वभौमता सर्वमान्य थी। वदान्यता के लिये दो ही उपमान थे, अङ्गराज कर्ण और भोज और साहित्यप्रियता एवं गुणग्राहकता के लिये केवल मालवराज कर्ण। समय पाकर भोज के प्रति यह अनुराग कम नहीं हुआ, कुछ बढ़ा ही है। उदयपुर-प्रशस्ति में भोज के लिये लिखा है :-

साधितं विहितं दत्तं ज्ञातं तद्यन्न केनचित्।
किमन्यत्कविराजस्य श्रीभोजस्य प्रशस्यते ॥१८॥

"उसने उसका साधन और विधान किया, उसने वह दिया और उसका ज्ञान प्राप्त किया, जो दूसरों के सामर्थ्य के बाहर था। कविराज भोज की इससे अधिक क्या प्रशंसा की जाए।"

भोज कालीन कुछ व्यक्ति शायद इससे सहमत न होते। किन्तु हम इस अत्युक्ति में सत्य को देखते हैं। भोज ने वास्तव में वह श्री सरस्वती, और शक्ति का सामञ्जस्य उपस्थित किया था जो किसी देश या काल में सुलभ नहीं है।

[ डा. दशरथ शर्मा ]

# परिशिष्ट ५

## त्रिविध-वीर जगद्देव परमार*

१ जगद्देव परमार का नाम समस्त भारत के इतिहास मे प्रसिद्ध है। इसकी अपूर्व कीर्त्ति से मालव, राजस्थान, गुजरात, दक्षिणादि प्रदेश अब तक सुरभित है। यह अनेक विचित्र कथाओं का नायक है। अनेक कवियों ने अनेक भाषाओं मे इसके गुण का गान किया है, किन्तु यह गुणगान इस सीमा तक पहुँच चुका है, कि गुण को ही हम द्रव्य समझ बैठे है। इस ऊपरी लीपापोती को दूर कर वास्तविक जगद्देव परमार को राजस्थान-भारती के पाठकों के सम्मुख रखना इस निबन्ध का ध्येय है।

२ कथाओं के अनुसार मालवे के राजा उदयादित्य परमार के दो रानिया थीं, एक वाघेली और दूसरी सोलकिन। वाघेली का पुत्र था रणधवल और सोलकिन का जगद्देव। वाघेली राजा की प्रेमपात्र थी, इसलिये उसी का पुत्र रणधवल युवराज नियत हुआ और मनस्वी कुंवर जगद्देव को मालवा छोडना पडा। उसने पाटन जाकर गुर्जरराज सिद्धराज के यहाँ नोकरी की। विधिविधान से दी हुई सिद्धराज की आयु पूरी हो चुकी थी;

---

* राजस्थान भारती—भाग ४, अक ४ से पुनमु द्रित, लेखक डा दशरथ शर्मा।

किन्तु जगदेव ने अपना, अपनी स्त्री का और अपने दो पुत्रों के मस्तक योगिनी को चढ़ा कर सिद्धराज के लिये ९८ वर्ष की आयु और प्राप्त की। इस अपूर्व स्वामिभक्ति से प्रसन्न हो कर योगिनियों ने जगद्देव को सकुटुम्ब पुनर्जीवित किया। सिद्धराज ने ये सब बातें छिपे-छिपे देखी थीं। उसने भरे दरबार में जगद्देव की भूरि-भूरि प्रशंसा की और उसका वेतनादि से मान बढ़ाया। कुछ दिन बाद सिद्धराज ने मालवे पर चढ़ाई करने का निश्चय किया। जगद्देव को जब यह ज्ञात हुआ तो उसने सिद्धराज की नौकरी को तिलान्जलि दी और वापस मालवे पहुँचा। उदयादित्य ने उसका स्वागत किया। रणधवल के स्थान पर अब जगद्देव युवराज नियत हुआ। उदयादित्य की मृत्यु के बाद, जगद्देव गद्दी पर बैठा। उसने बावन वर्ष राज्य किया।[1]

३. मै यही कथा अनेक रूप-रूपान्तरों में पढ़ और सुन चुका हूँ। किन्तु इसे सर्वथा विश्वसनीय मानना भूल है। जगद्देव, अवश्य उदयादित्य का पुत्र था। उसकी वीरता और दानशीलता भी निस्सन्दिग्ध है। पृथ्वीराजविजय से यह भी सिद्ध है कि उदयादित्य परमार और कर्ण चौलुक्य समसामयिक राजा थे[2]। इसलिये कर्ण चौलुक्य के पुत्र सिद्धराज जयसिंह के समय

---

१. देखें फार्बस रचित रासमाला, भाग प्रथम, पृ० १७७ (एच० जी० रालिन्सन द्वारा सम्पादित संस्करण: राजस्थानी वाता (नवयुग साहित्य मन्दिर, बीकानेर द्वारा प्रकाशित), और विश्ववाणी, वर्ष ४, पृष्ठ ३२• पर श्री अगरचचन्द नाहटा का लेख, 'दानवीर जगद्देव पंवार'

२. देखे सर्ग पंचम, श्लोक ७६–७८

उदयादित्य परमार के पुत्र जगद्देव परमार का अस्तित्व सम्भव है।[3] यह भी असम्भव नहीं है कि कुछ समय तक जगद्देव गुजरात मे ठहरा हो। उनके उत्तरकालीन वैमनस्य की ध्वनि भी हमे जयनद के शिलालेख मे मिलती है। किन्तु बाकी सब कपोलकल्पना मात्र है। इतिहास से हमे जगद्देव के रणधवल नाम या विरुद वाले किसी भाई का पता नहीं चलता। न हम यह मान सकते हैं कि अपने पिता के राज्यकाल मे ही जगद्देव ने जयसिंह सिद्धराज के दरबार मे आश्रय लिया, क्योंकि जयसिंह के सिंहासनासीन होने से कई वर्ष पूर्व ही जगद्देव के पिता उदयादित्य का देहान्त हो चुका था। यह भी झूठ है कि उदयादित्य की मृत्यु के बाद जगद्देव मालवे की गद्दी पर बैठा, उसके बावन वर्ष राज्य करने का प्रश्न तो दूर ही रहा। उदयादित्य के वास्तविक उत्तराधिकारी जगद्देव के बड़े भाई लक्ष्मदेव और नरवर्मा थे। इनमे लक्ष्मदेव जगद्देव के समान ही वीर और कीर्तिशाली था।[4]

४ जगद्देव परमार की वास्तविक जीवनी के मुख्य आधार निम्नलिखित हैं —

(१) जगद्देव के समय का शक स० १०३४ (ई० स० ११११), का डोंगरगाव का शिलालेख

---

३ श्री देवदत्त रामकृष्ण भण्डारकर ने न जाने इस सम सामयिकता को क्यों सन्दिग्ध माना है (शिलालेख न० २०८८ पर टिप्पण, लिस्ट ऑफ दी इन्स्क्रिप्शन्स ऑफ नादर्न इण्डिया)

४ लक्ष्मदेव के लिये नरवर्मा का वि० सवत् ११६१ का शिलालेख पढ़े।

(२) जगद्देव का जयनद का शिलालेख

(३) अमरुकशतक पर अर्जुनवर्मा की रसिकसन्जीवनी नाम की टीका में जगद्देव का उल्लेख

(४) होयसाल राज्य के कई शिलालेखों में जगद्देव के आक्रमण का वर्णन

(५) भोजवर्मा का वेलाव शिलालेख

(६) प्रबन्धचिन्तामणि

५. जगद्देव के प्रारम्भिक जीवन का सब से अच्छा वर्णन डोंगरगांव के शिलालेख में है। इसमें लिखा है कि भोज के भाई राजा उदयादित्य के अनेक पुत्र थे। किन्तु अपने मनोनुकूल पुत्र की इच्छा से उसने भगवान् शिव की आराधना की। इसके फलस्वरूप उसके जगद्देव नाम का पुत्र हुआ। जब उदयादित्य स्वर्गस्थ हुआ तो राज्य जगद्देव के प्रायः हस्तगत था। लक्ष्मी स्वयं उसे अपना पति चुन रही थी। किन्तु बड़े भाई से पूर्व विवाह करने से मनुष्य को परिवित्ति दोष लगता है; ( मानो ) इसी भय से उसने राज्य बड़े भाई को सौंप दिया।[५]

६. इस वर्णन से अनुमित किया जा सकता है कि जगद्देव उदयादित्य का कनिष्ठ पुत्र था। पिता का बड़ा लाडला भी रहा होगा। भाई लक्ष्मदेव के राज्य-काल में सम्भवतः वह मालवे में ठहरा किन्तु नरवर्मा के सिंहासनासीन होने पर उसने मालवा

५. एपिग्राफिया इंडिका, खण्ड २६, पृष्ठ १८२, श्लोक ७–८.

छोड़ा ६। दन्तकथाएं उसे मालवे से गुजरात पहुँचाती हैं। किन्तु डोंगरग्राम के शिलालेख में लिखा है कि उसने कुन्तलेन्द्र के यहाँ जाकर नौकरी की। कुन्तलेन्द्र उससे कहता, "तुम मेरे पुत्रों में सर्वप्रथम हो, तुम मेरे राज्य के स्वामी हो, मेरी दक्षिण भुजा हो, तुम मूर्तिमान् मेरी सब दिशाओं में जय हो, तुम मेरी आत्मा ही हो" ७। इस स्पष्ट उल्लेख की दन्तकथाओं से कुछ संगति मेरुतुङ्ग-रचित प्रबन्धचिन्तामणि के आधार पर की जा सकती है। उसने जो कुछ जगद्देव के विषय में लिखा है वह इतना रोचक है कि उसे उद्धृत करने की उत्कट इच्छा का मैं संवरण नहीं कर सकता। यह उद्धरण जगद्देव के जीवन पर ही प्रकाश नहीं डालता, यह उन कथाओं के खण्डन के लिये भी पर्याप्त है, जो जगद्देव को सिद्धराज जयसिंह का भृत्य बनाती हैं। कथक लोग किस प्रकार से राजाओं के नामों को बदलते हैं—इसका भी यह उद्धरण अच्छा उदाहरण है। कुन्तलेन्द्र वीरविक्रमादित्य षष्ठ से राजस्थानियों और गुजरात वालों का क्या सम्बन्ध? वे

---

६ नामसाम्य से लक्ष्मदेव जगद्देव का सहोदर भाई प्रतीत होता है। दोनों में शायद पर्याप्त प्रेमभाव रहा हो। प्रबंध चिंतामणि के अनुसार जगद्देव, सिद्धराज जयसिंह से सम्मानित होने के बाद, कुंतलदेश में गया। सिद्धराज सन् १०६४ में गद्दी पर बैठा और इसी समय के आसपास लक्ष्मदेव की मृत्यु हुई। इससे भी यही अनुमान होता है कि लक्ष्मदेव की मृत्यु के बाद ही उसने मालवा छोड़ा। नरवर्मा से उसका विशेष सौहार्द न रहा होगा।

७ एपिग्राफिया इण्डिका, खण्ड २६ पृष्ठ १८३ श्लोक ६

तो जानते थे वर्वरक-जिष्णु जयसिंह सिद्धराज को जिसके यहां एकाध महीने सम्भवतः जगद्देव ठहरा। बस यही कुन्तलेन्द्र के स्थान पर गूर्जरेन्द्र को रखने का कारण रहा होगा। चालुक्यराज को चौलुक्यराज समझना भी आसान था। मेरुतुङ्ग के समय तक लोग जगद्देव के विषय में कुछ जानते थे, यद्यपि उस समय भी जगद्देव अनेक आश्चर्यमयी कथाओं का आधार बन चुका था। परवर्ती लेखक और कवि इस सामान्य ऐतिहासिक ज्ञान से भी प्रायः शून्य थे।

७. मेरुतुङ्ग का वर्णन निम्नलिखित है[८] :—

"जगद्देव नाम का क्षत्रिय त्रिविध वीर था। सिद्धराज द्वारा खूब सम्मानित होने पर भी जब उसे उसके गुणरूपी मंत्र से वशीभूत शत्रुमर्दक परमर्दी राजा का निमन्त्रण मिला तो वह पृथ्वी-रमणी के केशकलापरूपी कुन्तल देश में चला गया। उसके आगमन की सूचना द्वारपाल ने जब राजा को दी उस समय एक वेश्या नंगी होकर ( राजा के सामने ) पुष्पचलनक नृत्य कर रही थी। उसी समय उसने लज्जित होकर चादर ओढ़ ली और वहीं बैठ गई। राजा ने आकर जगद्देव को छाती लगाया और उससे मधुरालाप किया। जगद्देव को उसने प्रधान परिधान-दुकूल और लाखों की कीमत के अन्य दो वस्त्र दिये। जगद्देव के महामूल्यवान् आसन पर बैठने पर जब सभा की हलचल समाप्त हुई, तो राजा ने उस वेश्या को नाचने का आदेश दिया। तब

८. प्रबन्धचिन्तामणि, सिंघी जैन ग्रन्थमाला, पृ० ११४–११६

उचित बात को कहने में कुशल अत्यन्त चतुरा उस वेश्या ने उत्तर दिया—"जगत् का एकमात्र पुरुष जगद्देव आज यहाँ आया है। उसके सामने बिना वस्त्र के नाचने में मैं लजाती हूँ। स्त्रियों के सम्मुख ही स्त्रिया मन-मानी चेष्टा करती हैं।" उसकी अपूर्व प्रशसा से प्रसन्न होकर जगद्देव ने राजा के दिये हुए दोनों वस्त्र उसे दे डाले।"

"इसके बाद जब परमर्दी के प्रसाद से जगद्देव को किसी एक देश का आधिपत्य मिला, तो उसका ऋणग्रस्त उपाध्याय उससे मिलने आया। उसने यह काव्य भेंट किया—

अक्षत्रक्षतवालिनो भगवत कस्यापि सङ्गीतक—
व्यासक्तस्य च तस्य कुन्तलपते पुण्यानि मन्यामहे।
एक कामदुघामदुग्ध मरुत सूनो सुबाहुद्वयी
प्रत्यक्षप्रतिपक्ष भार्गव-भवानन्यस्य चिन्तामणि॥

"हम दो आदमियों के पुण्य को मानते हैं, एक तो अक्षत्रिय-विधि से वाली को मारने वाले किसी भगवान् ( रामचन्द्र ) को, और दूसरे सगीत में आसक्त कुन्तलपति को। इसमें एक ने तो वायुपुत्र ( हनुमान ) के कामधेनुरूप सुभुजद्वय का दोहन किया, और दूसरे ने चिन्तामणिस्वरूप शत्रुओं के लिये प्रत्यक्ष परशुराम आपको प्राप्त किया।

"इस काव्य के पारितोषिक में महादानी जगद्देव ने आधी लाख ( मुद्राए ) दीं।[६]

---

६ इसके बाद प्रबन्धचिन्तामणि ने १५ श्लोक और दिये हैं और उसके बाद लिखा है, 'इत्यादीनि बहूनिकाव्यानि यथाश्रुतानि नातव्यानि", जिससे स्पष्ट है कि मेरुतुग के समय जगद्देव विषयक पद्यों की सख्या पर्याप्त रही होगी।

"राजा श्री परमर्दी की महारानी को जगद्देव अपनी बहन मानता था। एक बार राजा ने सीमान्त के किसी राजा (?) को हराने के लिये जगद्देव को भेजा। जब जगद्देव देवपूजन कर रहा था तो उसने सुना कि छलाघात से शत्रुसेना ने उसकी सेना को भगा दिया है। किन्तु उसने देवार्चन न छोड़ा। राजा ने चरों के मुख से जगद्देव की इस अश्रुतपूर्व पराजय की बात जब सुनी तो उसने अपनी महारानी से कहा, "तुम्हारे भाई को संग्राम में वीरता का अहङ्कार है, किन्तु जब शत्रुओं ने उस पर आक्रमण किया तो वह भाग भी न सका।" ऐसी राजा की परिहासोक्ति को सुन कर महारानी अरुणोदय के समय पश्चिम दिशा को देखने लगी। राजा ने जब पूछा कि 'क्या देखती हो' तो उसने उत्तर दिया कि 'सूर्योदय को'। राजा ने कहा, "भोली-भाली स्त्री, क्या पश्चिम में सूर्योदय कभी हो सकता है?" उसने उत्तर दिया, 'पश्चिम में सूर्योदय विधि के विधान के विरुद्ध है। किन्तु इस दुर्घट वस्तु के घटित होने पर भी क्षत्रियदेव जगद्देव की हार नहीं हो सकती।' पति-पत्नी इस तरह प्रियालाप कर रहे थे। उधर जगद्देव ने देवार्चन के बाद उठ कर पांचसौ सुभटों के साथ शत्रु राजाओं की सेना पर आक्रमण किया और उसे इसी प्रकार आसानी से नष्ट कर डाला जैसे सूर्य अन्धकार को, केसरि-किशोर हाथियों के समूह को, और प्रचंड अंधड़ घनघोर घनघटा को कर डालता है।"

८. गूर्जरदेशीय राजाओं के वृत्तांत के पूरे जानकार और उनके

यश का अनेकश गान करने वाले आचार्य मेरुतुङ्ग के इस कथन से यह प्रमाणित है कि जगद्देव गुर्जरदेश में अधिक दिनों तक नहीं ठहरा। शायद उसने सिद्धराज जयसिंह की नौकरी कभी स्वीकार ही न की। सिद्धराज जगद्देव की वीरता से परिचित था। उसने जगद्देव का सम्मान भी किया। किन्तु जगद्देव को कुन्तल-देशाधिपति परमर्दी (कल्याणाधिपति चालुक्यराज विक्रमादित्य षष्ठ) का निमंत्रण मिल चुका था। इसलिये जगद्देव वहीं चला गया। परमर्दी ने 'जगद्देव को किसी देश विशेष का अधिपति बनाया, और परमर्दी के दरबार में रहके ही जगद्देव ने अपनी दानवीरता की ख्याति विशेष रूप से प्राप्त की। राजस्थान में जगद्देव और कंकाली की कथा प्रसिद्ध है। कंकाली सिद्धराज के दरबार में पहुँची। जगद्देव को देखते ही उसने अपना मस्तक वस्त्र के अन्चल से ढक लिया। इस कथा का बीज ऊपर उद्धृत प्रबन्धचिंतामणि की कथा में अनुसन्धेय है। इसी प्रकार जगद्देव विषयक अन्य कथाएँ भी बीज रूप में हमें इतस्ततः मिलती हैं।[10]

८ जगद्देव ने कुन्तलेन्द्र के दरबार में जो ख्याति प्राप्त की उसका डोंगरगाम के शिलालेख ने सामान्यतः इस प्रकार निर्देश किया है [11]—

---

१० उदाहरण के लिए देखें जयचन्द्र के दरबार में प्रच्छन्नरूप से पृथ्वीराज के पहुँचने पर कवियों का व्यवहार। शायद ये दोनों कथाएँ किसी पुरानी कथा से ली गई हो।

११ 'एपिग्राफिया इण्डिका', खण्ड २६ पृष्ठ १८३-१८४।

अर्थिप्रत्यर्थिनो यस्मिन् वा (वा) णैः स्वर्णैश्च वर्षति ।
दैन्यसैन्यनिधिं मुक्त्वा तेऽशङ्कितमुपासते ॥१०॥
न स देशो न स ग्रामो न स लोको न सा सभा ।
न तन्नक्तं दिवं यत्र जगद्देवो न गीयते ॥११॥

"जगद्देव जब अर्थियों (याचकों) और प्रत्यर्थियों (शत्रुओं) पर सुवर्णों ( स्वर्णमुद्राओं ) और बाणों की वर्षा करता, तो अर्थी दैन्यसमुद्र का और प्रत्यर्थी सैन्यसमुद्र का परित्याग कर निश्शङ्क उसकी उपासना करते । न वह देश था, न वह ग्राम; न वह लोक था और न वह सभा; न वह रात्रि थी और न वह दिन जहां जगद्देव ( के यश ) का गान न होता हो ।"

१०. डोंगरगांव लेख में निर्दिष्ट अर्थियों पर जगद्देव की इस कृपा के अनेक उदाहरण मिलते हैं। किन्तु प्रत्यर्थियों पर उसके दृढ़ प्रहार भी किसी समय कुछ कम प्रसिद्ध न थे। किसी कवि के शब्दों में जिस प्रकार समुद्र का गाम्भीर्य, पृथ्वी का विस्तार, आकाश की व्यापकता, मेरु की तुङ्गता, विष्णु की महिमा, कल्पवृक्ष की उदारता, गंगा की पवित्रता, और चन्द्रमा का अमृत-वर्षण कोई नवीन वस्तु नहीं है, उसी तरह जगद्देव की वीरता कुछ नई बात न थी। यह तो स्वभावसिद्ध थी। जगद्देव की विजय तो अनेक रही होंगी। ये कब और किस समय हुईं यह पूर्णतया जानने के साधन तो हमारे पास नहीं हैं। किन्तु जगद्देव के सेनापति दाहिमा लोलार्क के बिना तिथि वाले जयनद के शिलालेख से हमें इतना अवश्य ज्ञात है कि:—

(१) जगद्देव ने आन्ध्राधीश को बुरी तरह हराया।

(२) उसने चक्रदुर्ग के स्वामी को पराजित कर उसे दण्ड में बहुत से मस्त हाथी देने के लिये विवश किया।

(३) उसके मस्त हाथियों की मार से शत्रुओं की हड्डियों के ढेर के ढेर घोर समुद्र में लग गये। मलहराधीश (होयसलराज) को इससे अत्यन्त दुःख हुआ।

(४) उसके धनुष की ध्वनि जयसिंह की विक्रम कथाओं के स्वाध्याय में सध्यावनगर्जन रूपी विघ्न है।

(५) कर्ण नृपति ने इसका आश्रय ग्रहण किया [१२]।

११ जगद्देव के ये वीर कार्य दो विभागों में विभक्त किये जा सकते हैं। इनमे पहले तीन, दक्षिण दिशा से सम्बन्ध रखते हैं, और अन्तिम दो उत्तर भारत से। दक्षिण की विजय उसने कुन्तलेन्द्र के सेनापति के रूप मे प्राप्त की होगी। चालुक्यराज विक्रमादित्य षष्ठ साम्राज्याभिलाषी राजा था। उसने समस्त दक्षिणापथ मे विजय का डका बजाकर सन् १०७६ में एक नवीन सम्वत् चलाया। जगद्देव और विक्रमादित्य एक दूसरे के अनुरूप थे। जगद्देव ने विक्रमादित्य को स्वामी के रूप में स्वीकार किया, किन्तु विक्रमादित्य ने उसे अपना पुत्र मान कर। [१३] यही पारस्परिक भावना इन दोनों के घनिष्ठ सम्बन्ध का कारण बनी।

---

१२ वही, खण्ड २२, पृ० ६० ६१

१३ टिप्पण ७ देखें। प्रबन्धचिन्तामणि के उद्धरण से भी विक्रमादित्य की जगद्देव के प्रति आत्मीयता स्पष्ट है।

विक्रमादित्य के जीवन के अन्तिम भाग में जब सामंत इधर-उधर विद्रोह करने लगे, केवल जगद्देव पूर्ववत् स्वामिभक्त बना रहा।[१४] उसने अनेक विद्रोही सामन्तों को पराजित किया, और स्पष्टतः यह सिद्ध किया कि वह चालुक्य साम्राज्य के शत्रुओं के लिए वास्तव में परशुराम है।[१५]

१२. आंध्रदेश कृष्णा और गोदावरी नदियों के बीच में स्थित है। जगद्देव के समय इसकी राजधानी वेङ्गी थी, और इसका शासक कुलोत्तुङ्ग चोल था। इसके राज्यकाल में चोल और वेङ्गी राज्य एक बन गये। विक्रमादित्य ने अपने साले अधिराजेन्द्र को चोल-सिंहासन पर बिठाया। कुलोत्तुङ्ग इसे हटा कर स्वयं चोलदेश का शासक बना, और जब विक्रमादित्य ने उस पर आक्रमण किया तो उसने विक्रमादित्य के बड़े भाई चालुक्यराज सोमेश्वर को विक्रमादित्य पर आक्रमण करने के लिये उकसाया। विक्रमादित्य सोमेश्वर को हराकर स्वयं राजा बना और अनेक बार उसने वेंगी पर आक्रमण किये।[१६]

---

१४. 'होयसल वंश' के लेखक विलियम Coelho और श्री कृष्ण शास्त्री का कथन इस विषय में पठनीय है। दोनों के मतानुसार विक्रमादित्य का प्रभाव पीछे से उतना न रहा जितना राज्यकाल के आरम्भ मे था। जगद्देव अपने स्वामी का सच्चा सेवक था और उसने अनेक विद्रोही सामन्तो पर आक्रमण किये। हम भी अनेक प्रमाणों के आधार पर इसी परिणाम पर पहुचे है।

१५. देखे प्रबन्धचिन्तामणि मे प्रयुक्त शब्दावलि, "प्रत्यक्ष-भार्गव भवानन्यस्य चितामणि." ( पृ० ११५ )

१६. कुलोतुङ्ग ( राजिग ) और विक्रमादित्य के संघर्ष के लिये विक्रमाङ्क-देवचरित, सर्ग ६ देखे।

सन १११८ के लगभग विक्रमादित्य वेंगी पर अधिकार करने मे सफल हुआ। सम्भवत इसी विजय मे उसे जगद्देव से पूर्ण सहायता मिली होगी।

१३ चक्रदुर्ग वस्तर राज्यका चक्रकोट नाम का स्थान है। उस समय यहा नागवंशियों का अधिकार था। सन् १०७६ से कुछ पूर्व विक्रमादित्य ने चक्रदुर्ग के राजा को पराजित किया।[१७] जगद्देव को फिर उस पर क्यो आक्रमण करना पडा, यह वताना कठिन है किन्तु इस बार राजा को दण्ड मे बहुत से मस्त हाथी देने पडे।

१४ दोर समुद्र का शासक कुमार एरेयग (सन १०६३-११००) विक्रमादित्य का सामन्त था। सोमेश्वर के विरुद्ध इसने विक्रमादित्य की सहायता की। मालवे पर आक्रमण कर इसने धारा को जलाया। चोलों से उसने गगावाडी को जीता। इसके तीन पुत्र थे, वल्लाल प्रथम, विष्णुवर्द्धन और उदयादित्य। वल्लाल ने सन् ११०४ के आस पास विक्रमादित्य के विरुद्ध विद्रोह किया। जगद्देव इसे दण्ड देने के लिये नियत हुआ। स्वामी की आज्ञा का पालन करने के सिवाय जगद्देव को यह कार्य दूसरे कारणों से भी रुचिकर रहा होगा। एरेयग ने धारा को लूटा था, जगद्देव एरेयग की राजधानी पर आक्रमण कर उसका वदला क्यों न ले? जयनद के शिलालेख मे जगद्देव की विजय का उल्लेख है। उसके हाथियों ने दोरसमुद्र मे शत्रुओं की हड्डियों

१७ देखें विक्रमाङ्कदेवचरित, सर्ग चतुर्थ, श्लोक ३०

के ढेर के ढेर लगा दिये। किन्तु होयसल शिलालेखों में दोरसमुद्र की विजय जगद्देव की नहीं अपितु बल्लाल प्रथम की मानी गई है। सन् ११९६ के एक शिलालेख में लिखा है, वल्लाल ने युद्ध में अपने पर आक्रमण करने वाली सेना को ऐसा पीछे हटाया कि *मालवाधीश जगद्देव* (जिसके मस्त हाथी को उसने चिंघड़वा दिया था) कह उठा, "धन्य है, घुड़सवार, धन्य है!" इसका उत्तर बल्लाल ने दिया, "मै केवल घुड़सवार ही नहीं, मै वीर बल्लाल हूँ"[१८] और शत्रु संहार द्वारा उसने जगत् को चकित कर दिया।" इसी तरह श्रवण बेलगोल्ल के सन् १०५९ के शिलालेख में लिखा है, "चक्री ( विक्रमादित्य ) द्वारा प्रेपित *मालवराज जगद्देव* के सैन्य रूप समुद्र को···विष्णु (विष्णुवर्द्धन) सहसा पी गया।"[१९] सन् ११६१, १११७, और ११६४ के शिलालेखों में इसी प्रकार बल्लाल और विष्णुवर्द्धन की विजय का उल्लेख है।[२०] सन् १११७ के लेख में, जो इन सब में प्राचीन है, विष्णुवर्द्धन और बल्लाल की विजय का वर्णन इस प्रकार से है:— "दोर समुद्र में उन्होंने जगद्देव की सैन्य को पराजित किया,

---

१८. एपिग्राफिया कर्नाटिका, खण्ड ६, तरिकेरे तालुक, संख्या ४५। 'होयसल वंश' के लेखक विलियम कोएल्हो ने इस जगद्देव को सांतरा का राजा मानने की भूल की है। प्रोफेसर कोएल्हो ने जगद्देव के लिये प्रयुक्त 'मालवाधीश' शब्द पर ध्यान नही दिया।

१९. वही, खण्ड २, श्रवणबेलगोल्ल के शिलालेख, ( नवीनसंस्करण ), नं० ३४९, पृ० १६८.

२०. वही खण्ड ५, Bl No. ५८, Hn, No. ११६, Bl. No. १९३

सिन्दूर के स्थान पर हाथियों के रक्त से उन्होंने विजयश्री को रंजित किया, और उसकी नायकमणि के साथ-साथ उसने कोष पर अधिकार कर लिया।"[२१]

१५ इन परस्पर विरोधी प्रमाणों के आधार पर दोरसमुद्र में जगद्देव की जय या पराजय के विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। किन्तु उसके शौर्य के विषय में किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता। सच्चा शूर वह है जो शत्रु के शौर्य की भी कद्र करे। यह गुण जगद्देव में वर्तमान था।

१६ ऊपर दिये हुए प्रबन्धचिन्तामणि के उद्धरण में जिस सीतलभूपाल पर जगद्देव के आक्रमण का वर्णन है, वह सम्भवतः यही दोरसमुद्र का राजा बल्लाल है। प्रबन्धचिन्तामणि का पाठ सीलालभूपाल या श्रीमालभूपाल है, जिसका कुछ संशोधन से सीलालभूपाल अर्थ किया जा सकता है। वास्तव में 'सलह' होयसल वंश की जाति रही होगी[२२]। उत्तर के शिलालेखों में दोरसमुद्र के शासक के लिये सलह-वंशीय जाति सलह का राजा शब्द प्रयुक्त हुआ है। प्रबन्धचिन्तामणि की संगति में भी सलहभूपाल का श्रीमालभूपाल परिवर्तित होना कठिन बात नहीं है। इस श्री सलहभूपाल ने जगद्देव को सेना

२१ वही, जि॰ १० पृ॰ ६४

२२ द्र॰ [illegible]

को पराजित कर दिया, किन्तु अन्त में जगद्देव के निजी शौर्य के कारण विजयश्री उसके हाथ रही। सम्भवतः इसी रूप से हम जयनद के शिलालेख, होयसल शिलालेखों, और प्रबन्धचिन्तामणि के वर्णन की परस्पर संगति बैठा सकते हैं[२३]। विष्णुवर्द्धन का अन्त तक अपने लिये 'महामण्डलेश्वर' पदवी का प्रयुक्त करना उसकी कम से कम आंशिक हार का द्योतक है।

१७. जगद्देव दक्षिण अवश्य चला गया, किन्तु वह स्वदेश को न भूला। नरवर्मा के राज्यकाल में मालवे की उर्वराभूमि पर विपत्ति के बादल मंडराने लगे। अजमेर के स्वामी अर्णोराज ने नरवर्मा को पराजित किया। पश्चिम से सिद्धराज जयसिंह ने मालवे पर अपनी चढ़ाइयां शुरू कीं। चन्देलों ने भी सम्भवतः मालवे की कुछ भूमि पर अधिकार कर लिया। इधर-उधर के अन्य राजा भी मालवे पर आक्रमण करने में न चूके होंगे। जगद्देव किसी ऐसे विपत्तिकाल के समय ही कुछ समय के लिये मालवे आया होगा।

---

२३. विष्णुवर्द्धन सन् १११७ मे विक्रमादित्य षष्ठ से मिलने गया। इसी समय सम्भवतः उसने अपनी आधीनता सूचित की होगी। विष्णुवर्द्धन अपने को अन्त तक महामण्डलेश्वर और चालुक्यराज के चरणकमल का निवासी कहता रहा। इससे स्पष्ट है कि या तो जगद्देव ने या विक्रमादित्य के अन्य किसी सामन्त ने विष्णुवर्द्धन को हराया। जयनद के शिलालेख के आधार पर हम यह श्रेय जगद्देव को दे सकते है।

जयनद शिलालेख के दसवें श्लोक मे जयसिंह की पराजय का निम्नलिखित वर्णन है —

आश्चर्यं जयसिंहविक्रमकथा स्वाध्यायस (स) ध्यावन-
 ध्यान यस्यधनुर्द्ध (र्द्ध न) नि नरपते र्व्यञ्जान्ति विस्तरिण ।
अद्याप्यर्बुद पर्व्वतो दरदरी द्वारेषु रात्रिंदिव-
 क्रन्दद्गूर्ज्जरवीरवर्गवनितानाष्पाम्बु (म्बु) पूरोम्मय ॥

इससे स्पष्ट है जयनद के शिलालेख के उत्कीर्ण होने से पूर्व जगद्देव और जयसिंह परस्पर विरोधी बन चुके थे। जगद्देव के धनुप की टकार अब जयसिंह की विक्रम कथा के लिये सध्यावन के गर्जन के समान थी। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि जगद्देव और जयसिंह का यह सग्राम कहीं आबू पहाड के आस-पास हुआ होगा। उसकी घाटियों के द्वारो पर रोती हुई गूर्जर वीरों की स्त्रियो के आसुओं से मानों बाढ सी आगई थी।

१८ शिलालेख के सम्पादक श्री धीरेन्द्रचन्द्र गागुली के मतानुसार इस श्लोक मे वर्णित जयसिंह भोज का पुत्र जयसिंह परमार है। यही मत डाक्टर श्री देवदत्त रामकृष्ण भण्डारकर का है। किन्तु श्लोक से स्पष्ट है कि यह जयसिंह वास्तव मे गूर्जरराज जयसिंह रहा होगा। परमार जयसिंह का राज्य तो जगद्देव के पिता उदयादित्य के भी गद्दी पर बैठने से पूर्व समाप्त हो चुका था। गूर्जरराज जयसिंह सिद्धराज की प्रबल इच्छा थी कि यह मालवे को हस्तगत करे। आबू भी परमारों के अधिकार मे था। यह सम्भव है कि आबू के परमार ने अपने

मालवे के भाइयों का साथ दिया हो और इसी कारण से सिद्धराज जयसिंह को आबू पर आक्रमण करना पड़ा हो। जगद्देव की विजय कुछ समय तक ही परमारों पर आई हुई आफत को टाल सकी। नरवर्मा और शायद जगद्देव की मृत्यु के बाद सन् ११३७ के आस-आस जयसिंह ने मालवे पर अधिकार कर लिया। आबू ने भी चौलुक्यों की आधीनता स्वीकार की।

१६. जिस कर्ण राजा ने जगद्देव का आश्रय ग्रहण किया, वह कौन था, यह भी विवेच्य है, ईस्वी सन् की बारहवीं शताब्दी के आस-पास ये कर्ण वर्तमान थे, चेदिराज लक्ष्मीकर्ण (लगभग १०४१-१०७२ ई.), उसका पुत्र यशःकर्ण (लगभग १०७३-११२५ ई.) और गूर्जरराज कर्ण (१०६४-१०९४)। इनमें से चेदिराज लक्ष्मीकर्ण भोज का प्रतिद्वंद्वी था। जगद्देव के युवावस्था में पहुँचने से पूर्व ही सम्भवतः वह मर चुका था। श्री धीरेन्द्रनाथ गांगुली गूर्जरराज कर्ण को जगद्देव का विरोधी मानते हैं। यह असम्भव नहीं है। शायद उदयादित्य के हाथों अपनी पराजय का बदला लेने के लिये उसने मालवे पर आक्रमण किया हो, किन्तु सन् १०९४ के आस-पास तक जगद्देव का बड़ा भाई लक्ष्मदेव मालवे का राजा था। उसने बंगाल, बिहार, उड़ीसा, चेदि आदि अनेक राज्यों पर आक्रमण किया। यदि सन् १०९४ तक (जो लक्ष्मदेव और कर्ण दोनों ही का सम्भवतः अन्तिम राज्यवर्ष था) जगद्देव ने चौलुक्यराज कर्ण को लक्ष्मदेव के सेनानी के रूप में पराजित किया होता तो ई० स० ११०४ के

नरवर्मा के नागपुर-शिलालेख मे यह विजय अवश्य उल्लिखित होती। इसलिये क्या यह मानना ठीक न होगा कि यह कर्ण वास्तव मे चेदिराज यश कर्ण है। यश कर्ण को विक्रमादित्य ने सन १०८१ ई से पूर्व हराया। लक्ष्मदेव ने भी त्रिपुरी का विध्वस इसी राजा को हरा कर किया होगा। जगद्देव इन दोनों मे से किसी एक का सेनापति होकर यश कर्ण पर आक्रमण कर सकता था। किन्तु कुन्तल की तर्फ से उसके आक्रमण की सम्भावना कम है। वह विक्रमादित्य का सेनापति और सामन्त था अवश्य, किन्तु सन् १०८१ तक न जगद्देव के पिता की मृत्यु ही हुई थी, और न जगद्देव ने विदेश के लिये प्रयाण ही किया था। इसलिये अधिक सम्भव यही है कि जगद्देव ने लक्ष्मदेव के सेनानी के रूप मे कर्ण को हराया और उसे अपनी शरण मे आने के लिये बाध्य किया। मालवा छोडने से पूर्व जगद्देव अपने शौर्य के लिये प्रसिद्ध हो चुका था। यह ख्याति सम्भवत. उसे लक्ष्मदेव-कालीनविजयों से मिली होगी।[२४]

२० जगद्देव मालवे का राजा कभी न हुआ। किन्तु जैसा प्रबन्धचिन्तामणिकार ने लिखा है वह विदेश मे भी परमर्दी विक्रमादित्य षष्ठ की कृपा से एक देश का अधिपति था। इस देश विशेष का कुछ ज्ञान हमे डोंगरगाव और जयनद के शिलालेखों से मिलता है, डोंगरगाव वरार के यवतमाल जिले का एक गाव

२४ के० वी० सुब्रह्मण्य की सम्मति है कि जगद्देव ने सन् १११७ म काकतीय राजा प्रोल द्वितीय को भी पराजित किया। यह ठीक हो तो जगद्देव की ज्ञात विजयो की सख्या और बढ जाती है।

है। इसके एक जीर्णशीर्ण मन्दिर के गर्भगृह से जगद्देव का एक शिलालेख मिला है, जिसमें जगद्देव के पूर्वजों की और स्वयं जगद्देव की प्रशस्ति के अतिरिक्त इस बात का भी उल्लेख है कि जगद्देव ने डोंगरग्राम, श्रीनिवास नाम के एक विद्वान् ब्राह्मण को दान में दिया। इससे यह स्पष्ट है कि विक्रमादित्य से यवतमाल के आस-पास का प्रदेश जगद्देव की जागीर में प्राप्त हुआ। किसी समय यह प्रदेश परमारों के राज्य के अंतर्गत था; किन्तु सन् १०८७ से कुछ पूर्व विक्रमादित्य षष्ठ ने इसे जीत कर अपने राज्य में मिला लिया। जयनद डोंगरगांव से लगभग ठीक ६५ मील पूर्व में है और इस समय यह हैदराबाद राज्य के अंतर्गत है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि जगद्देव की जागीर काफी बड़ी रही होगी। बरार का अधिकांश और हैदराबाद का कुछ उत्तरी भाग इस जागीर के अन्तर्गत था।

२१. जयनद के शिलालेख से हमें इसके अश्वसेना नायक दाहिमा जातीय लीलक का नाम मिलता है। उसका पिता गुणराज उदयादित्य का सेनानी था। कई विद्वानों का अनुमान है कि पूर्वबंगाल के राजा सामलवर्मा की मुख्य रानी, मालव्यदेवी, जगद्देव परमार की पुत्री थी।

२२. दन्तकथाओं के अनुसार जगद्देव रंग का सांवला होने पर भी अत्यन्त सुन्दर था। इस कथन की परिपुष्टि के लिये परमार राजा अर्जुनवर्मा की रसिकसञ्जीवनी टीका से यह उद्धरण दिया जा सकता है:—

यथास्मत् पूर्वजरूपवर्णने नाचि राजस्य–

सत्रासाइव सालसा इव लसद्गर्वी इवार्द्रा इव
व्याजिह्मा इव लज्जिता इव परिभ्रान्ता इवार्ता इव ।
त्वद्रूपे निपतन्ति कुत्र न जगद्देव प्रभो सुभ्रुवा
वाता वर्तन नर्तितोत्पलदल द्रोणी द्रुहो दृष्टय ॥

नाचिराज के वर्णन मे सम्भव है कुछ अत्युक्ति हो, किन्तु यह निराधार प्रतीत नहीं होता ।

७३ शिलालेखादि के आधार पर दिया हुआ यह जगद्देव का चरित सर्वांगपूर्ण नहीं कहा जा सकता । इस अपूर्व वीर के जीवन मे अन्य अनेक घटनाए हुई होगी, जिनके विषय मे शिला लेख मौन है । किन्तु जो कुछ भी हमे मिल सका है, वह अनेक भ्रातियों को दूर करने और जगद्देव के वास्तविक जीवन को समझने के लिये पर्याप्त है । कथाओं का जगद्देव मुख्यत दानवीर है । इतिहास का वास्तविक जगद्देव उससे कम नहीं उतरता । त्वष्टा के चक्र पर चढे सूर्य की तरह, ऐतिहासिक कसौटी पर कसे हुये जगद्देव का यश उज्जलतर ही प्रतीत होता है । इतिहास का जगद्देव दानवीर ही नहीं, त्रिविध वीर है । दान मे वह बलि और दधीचि का समकक्ष, शौर्य मे जगदेक वीर, और धर्मनिष्ठा मे अद्वितीय है । जगद्देव वास्तव मे जगद्देव है ।[२५]

—डा. दशरथ शर्मा

२५ शार्ङ्गधरपद्धति के श्लोक १२६१ मे इसी जगद्देव की दानवीरता का वर्णन है । जायसी ने भी पद्मावत में इसे एक महान् वीर के रूप म स्मरण किया है ।